रवीन्द्र-कथा-कुञ्ज

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ६० वाँ ग्रन्थ

रवीन्द्र-कथाकुञ्ज

[साहित्य-महारथी श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी
नौ श्रेष्ठ कहानियाँ]

अनुवादकर्ता—

नाथूराम प्रेमी

और

रामचन्द्र वर्मा

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
मालिक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

द्वितीय संशोधित संस्करण

मूल्य एक रुपया दो आने
नवम्बर, १९३८

मुद्रकः—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिं. प्रेस, ६ केळेवाडी, मुं. ४

निवेदन

लगभग छह वर्ष पहले मैंने रवि बाबूके पाँचों गल्प-गुच्छोंका आद्यन्त पाठ किया था। उस समय मुझे जो जो आख्यायिकायें बहुत ही अच्छी मालूम हुई थीं, जो बहुत ही भावपूर्ण, मार्मिक, और मनोमुग्धकर जान पड़ी थीं, उनपर मैंने निशान लगा दिये थे। इस कथाकुञ्जमें उन्हीं चुनी हुई कथाओंमेंसे नौ कथाओंका अनुवाद प्रकाशित किया जाता है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, अभी तक ये कथायें हिन्दीमें प्रकाशित नहीं हुई हैं।

इनमेंसे प्रारम्भकी छह कथाओंका अनुवाद स्वयं मैंने किया है और शेष तीनका मेरे सहृदय और सुलेखक मित्र बाबू रामचन्द्र वर्माने। इस बातका पूरा पूरा प्रयत्न किया गया है कि अनुवाद मूलके सर्वथा अनुरूप हो और मूलके भाव अविकृत रूपमें प्रकाशित हों।

इन कथाओंका चुनाव एक विशेष दृष्टिसे किया गया है। सहृदय और काव्य-मर्मज्ञ पाठक देखेंगे कि इसमेंकी प्रत्येक कथा एक एक छोटा-सा गद्य-काव्य है जो काव्यके उत्तमोत्तम गुणोंसे परिपूर्ण है। इन गद्य-काव्योंमें न उपमा उत्प्रेक्षादि अर्थालङ्कारोंकी कमी है और न शब्द-सौन्दर्यका ही अभाव है। शृङ्गार, हास्य, करुणादि रसोंका भी इनमें स्थान स्थानपर यथेष्ट परिपाक हुआ है।

मुझे आशा है कि हिन्दी संसारमें इन कथाओंका अच्छा आदर होगा और इनमें साहित्यसेवी सुजनोंको अपनी प्रतिभा विकसित करनेके लिए यथेष्ट सामग्री मिलेगी। २०-१२-१९२५

नाथूराम प्रेमी

द्वितीय संस्करण

कोई तेरह वर्षके बाद इस पुस्तकका दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। ये कहानियाँ अब भी मुझे इतनी प्यारी लगती हैं कि विक्रीकी विशेष आशा न होनेपर भी मैं इनके प्रकाशनके लोभको संवरण न कर सका। १-११-१९३८

—प्रकाशक

कथा-सूची

		पृष्ठसंख्या
१	जय-पराजय	१
२	पड़ोसिन	१५
३	राजतिलक	२३
४	समाप्ति	४२
५	जासूस	७३
६	दुर्बुद्धि	८७
७	अतिथि	९५
८	अध्यापक	१२४
९	दृष्टिदान	१५५

रवीन्द्र-कथाकुञ्ज

जय और पराजय

राजा उदयनारायणकी कन्या अपराजिताको उनके सभा-कवि शेखरने कभी अपनी आखोंसे नहीं देखा। किन्तु जब कभी वे किसी नवीन काव्यकी रचना करके सभासदों को सुनाते, तब इतनी ऊँची आवाजसे पढ़ते, कि वह रचना उस ऊँचे महलके ऊपर झरोखोंमें बैठी हुई अदृश्य श्रोत्रियोंके कानों तक पहुँचे बिना नहीं रहती। मानो वे किसी एक ऐसे अगम्य नक्षत्र-लोकके उद्देश्यसे अपना संगीतोच्छ्वास प्रेरित करते, जहाँ तारागणोंके बीच उनके जीवनका एक अपरिचित शुभग्रह अपनी अदृश्य महिमा विस्तृत करता हुआ सुशोभित था।

कभी वे छायाके समान कुछ देखते, कभी बिछुओंकी झनकारके समान कुछ सुनते, और तब बैठे-बैठे मन ही मन सोचते कि वे दोनों चरण कैसे सुन्दर होंगे जिनमें वे सोनेके बिछुए बंधे हैं, और ताल देकर गाते हैं। वे दोनों लाल और शुभ्र कोमल चरण-तल प्रत्येक डगपर न जाने

कितने सौभाग्य, कितने अनुग्रह और कितनी करुणाके साथ पृथ्वीका स्पर्श करते हैं। मनमें उन्हीं दोनों चरणोंकी प्रतिष्ठा करके कविवर शेखर ज्यों ही अवकाश पाते, त्यों ही उस जगह आकर लोट जाते और उन बिछुओंकी झन्कारके सुरमें अपना सुर बाँध देते।

किन्तु उन्होंने जो छाया देखी, वह किसकी छाया है और किसके बिछुओंकी झन्कार है, इस प्रकारका तर्क और संशय उनके भक्त हृदयमें कभी उठा ही नहीं।

राजकन्याकी दासी मञ्जरी जब घाटपर जाती तब शेखरके घरके आगेसे जाती और आते-जाते समय कविके साथ उसकी दो-चार बातें हुए बिना न रहतीं। बल्कि सुबह-शाम जब कभी सूना पाती वह शेखरके घर भी जा बैठती। हम यह नहीं कह सकते कि वह जितने बार घाटपर जाती, उतने बार जानेकी उसे कोई खास आवश्यकता ही थी और यदि थी भी, तो भी इस बातका पता लगाना तो कठिन ही था कि घाटको जाते समय वह सजधजकर, रंगीन कपड़े पहनकर और कानोंमें दो आम्र-मुकुल धारण करके क्यों जाती थी!

लोग देखकर हँसते और कानाफूसी करते; परन्तु इसपर उन्हें कोई दोष नहीं दिया जा सकता। मञ्जरीको देखते ही कविराज बहुत प्रसन्न हो उठते और उस प्रसन्नताको छिपानेका वे कोई प्रयत्न भी न करते।

विचारपूर्वक देखा जाय तो साधारण लोगोंके लिए 'मञ्जरी', नाम ही यथेष्ट था, परन्तु शेखर अपने कवित्वका प्रयोग करके उसे 'वसन्त-मञ्जरी' कहकर बुलाते और इससे लोगोंका सन्देह और भी बढ़ जाता।

इसके सिवा कविके वसन्त-वर्णनमें जहाँ तहाँ—'मञ्जुल वञ्जुल मञ्जरी' इस तरहके अनुप्रास भी पाये जाते। आखिर यह बात राजाके कानों तक भी पहुँच गई।

राजा साहब अपने कविके इस रसाधिक्यका परिचय पाकर बहुत ही खुश होते, और इस विषयको लेकर खूब हास परिहास करते। शेखरसे भी उसमें योग दिये बिना न रहा जाता। राजा हँसकर पूछते—"भ्रमर क्या केवल वसन्तकी राज-सभामें गाया ही करता है?" कविराज उत्तर देते, "नहीं, पुष्प-मञ्जरीका मधु भी चखा करता है।"

इस तरह सभी हँसते और आनन्द लाभ करते। उधर अंतःपुरमें राजकन्या अपराजिता भी मञ्जरीके साथ छेड़छाड़ करती और उसकी दिल्लगी उड़ाती। परन्तु मञ्जरी भी उससे असन्तुष्ट न होती।

मनुष्यका जीवन यों ही सत्यको मिथ्याके साथ मिलाकर किसी तरह कट जाता है। उसे कुछ विधाता गढ़ते हैं, कुछ मनुष्य आप गढ़ लेता है और कुछ चार आदमी गढ़ देते हैं। गरज यह कि जीवन प्रकृत और अप्रकृत, काल्पनिक और वास्तविक आदि तरह तरहके माल-मसालोंसे तैयार होता है।

अवश्य ही कविराज जो गीत गाते वे सत्य और सम्पूर्ण होते। उनके विषय वही राधा और कृष्ण—वही चिरन्तन नर और चिरन्तन नारी; वही अनादि दुःख और अनन्त सुख। उन्हीं गीतोंमें उनकी वास्तविक मर्म-कथा रहती, और उन्हींकी यथार्थता अमरापुरके राजासे लेकर दीन दुःखी प्रजा तक सभी अपने अपने हृदयमें जाँच करके देखते। उनके गाने सभीके मुँहपर चढ़े हुए थे। ज्यों ही चाँदनी खिलती और दक्षिणकी हवा बहने लगती, त्यों ही देशके चारों ओर न जाने कितने वनों, पथों, नौकाओं, झरोखों और आँगनोंमें उनके बनाये हुए गानोंका समा बँध जाता। उनकी प्रसिद्धिकी कोई सीमा नहीं रही।

इसी तरह बहुत समय बीत गया। कविराज कविता-रचना करते, राजा सुनते, राज-सभाके लोग 'वाह-वा' करते, मञ्जरी घाटपर आती

और अंतःपुरके झरोखेसे कभी कभी किसीकी छाया आकर पड़ जाती। कभी कभी नूपुरोंकी झनकार भी कानों तक आ पहुँचती।

२

इसी समय राजसभामें दक्षिण देशके एक दिग्विजयी कविका शुभागमन हुआ। उसने आते ही शार्दूलविक्रीड़ित छन्दमें राजाका स्तव-गान किया। वह अपने मार्गके समस्त राजकवियोंको परास्त करता हुआ अन्तमें इस अमरापुरमें आकर उपस्थित हुआ था।

राजाने बहुत ही आदरके साथ कहा—एहि एहि।

कवि पुण्डरीकने दम्भके साथ कहा—युद्धं देहि।

शेखर नहीं जानते थे कि काव्य-युद्ध कैसा होता है। परन्तु राजाकी बात तो टाली नहीं जा सकती—युद्ध किये बिना गुज़र नहीं। वे अत्यन्त चिन्तित और शंकित हो उठे, रातको नींद नहीं आई, उन्हें सब तरफ यशस्वी पुण्डरीकका दीर्घ बलिष्ठ शरीर, सुतीक्ष्ण वक्र-नासिका और दर्पोद्धत उन्नत मस्तक दिखाई देने लगा।

प्रातःकाल होते ही कम्पित-हृदय कविने रणक्षेत्रमें आकर प्रवेश किया। सभामण्डप लोगोंसे खचाखच भर गया, कलरवकी सीमा नहीं, नगरके सारे काम-काज बंद हो गये।

कवि शेखरका चेहरा उतरा हुआ था। उन्होंने बड़े कष्टसे प्रफुल्लताका आयोजन करके अपने प्रतिद्वंदी कवि पुण्डरीकको नमस्कार किया। पुण्डरीकने बड़ी लापरवाहीके साथ केवल इशारेसे नमस्कारका जवाब दिया और अपने अनुयायी भक्तवृन्दोंकी ओर देखकर हँस दिया।

शेखरने एक बार अन्तःपुरके झरोखोंकी ओर अपनी नजर दौड़ाई। देखा कि आज वहाँसे सैकड़ों कुतूहलपूर्ण काले नेत्रोंकी व्यग्र दृष्टियाँ इस जनतापर लगातार गिर रही हैं। उन्होंने अतिशय एकाग्र

होकर अपने चित्तको उस ऊर्द्ध्व लोककी ओर फेंका जो अपनी जय-लक्ष्मीकी वन्दना करके लौट आया और तब मन ही मन कहा, "हे देवि, हे अपराजिते, यदि आज मेरी जय हुई तो तुम्हारा नाम सार्थक हो जायगा।"

तुरही और भेरी बज उठीं। सारी सभा जय ध्वनि करके उठ खड़ी हुई। सफेद वस्त्र पहने हुए राजा उदयनारायणने शरत्कालके प्रभातकी शुभ्र मेघ-राशिके समान धीरे धीरे सभामण्डपमें प्रवेश किया। उनके सिंहासनपर बैठते ही पुण्डरीक सम्मुख आकर खड़े हो गये। सभामें सन्नाटा छा गया;

विराट्-मूर्ति पुण्डरीकने छाती फुलाकर और गर्दनको कुछ ऊपर उठा कर गम्भीर स्वरसे उदयनारायणका स्तव-पाठ करना शुरू किया। उनकी आवाज बहुत ही तेज थी। वह उस बड़े भारी सभा-मण्डपकी दीवारों, खम्भों, और छतोंपर समुद्रकी तरंगोंके समान गम्भीर गर्जनसे आघात-प्रतिघात करने लगी और उसके वेगसे सारी जनताके वक्षकपाट थर-थर काँपने लगे। उस रचनामें कितना कौशल, कितनी कारीगरी, उदय-नारायणके नामकी कितनी तरहकी व्याख्याएँ, उनके नामके अक्षरोंका कितने प्रकारका विन्यास, कितने तरहके छन्द और कितने यमक तथा अनुप्रासोंकी भरमार थी, इसका वर्णन नहीं हो सकता।

पुण्डरीक जब अपना गान समाप्त करके बैठ गये, तब कुछ देरके लिए वह निस्तब्ध सभा-गृह उनके कण्ठकी प्रतिध्वनि और हजारों हृद-योंके निर्वाक् विस्मयसे भर गया। दूर दूरसे आये हुए पण्डितगण अपने अपने दाहिने हाथ उठाकर उच्छ्वसित स्वरसे 'साधु साधु' कहने लगे।

तब राजाने शेखरके मुँहकी ओर देखा। शेखर भी भक्ति, प्रणय, अभिमान और एक प्रकारकी सकरुण संकोचपूर्ण दृष्टिसे राजाकी ओर देखकर धीरेसे उठ खड़े हुए। रामने जब लोक-रंजनके लिए दूसरी बार

अग्नि-परीक्षा करनी चाही थी, तब सीता इसी भावसे देखती हुई अपने स्वामीके सिंहासनके सम्मुख खड़ी हुई थी।

कविकी दृष्टिने चुपचाप राजाको समझाया कि मैं तुम्हारा हूँ। यदि तुम मुझे विश्वके सामने खड़ा करके परीक्षा करना चाहते हो तो करो, किन्तु— इसके बाद उन्होंने अपनी आँखें नीची कर लीं।

पुण्डरीक सिंहके समान और शेखर चारों ओरसे व्याधवेष्टित हरिण-के समान खड़े थे। इस तरुण युवकका रमणीके समान लज्जालु तथा स्नेहकोमल मुख, पाण्डुवर्ण कपोल और नितान्त स्वल्प शरीरांश देख-कर ऐसा मालूम होता था कि भावके स्पर्श मात्रसे ही इसका सारा शरीर वीणाके तारोंकी तरह काँपकर बज उठेगा।

शेखरने नीचा मुँह किये हुए बहुत ही मृदु स्वरमें अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया। उनका पहला श्लोक तो शायद किसीने अच्छी तरह सुना भी नहीं। इसके बाद उन्होंने धीरे धीरे अपना मुँह ऊँचा किया और जिस ओर दृष्टि डाली, उधरही से मानो सारी जनता और राज-सभाकी पाषाण-प्राचीर विगलित होकर बहुदूरवर्ती अतीतमें विलीन हो गई। उनका सुमिष्ट परिष्कार कंठस्वर काँपते काँपते उज्वल अग्नि-शिखाके समान ऊपर उठने लगा। पहले राजाके चंद्रवंशीय आदि पुरुषोंका गुणानुवाद किया गया और फिर क्रमशः अनेकानेक युद्ध, विग्रह, शौर्य, वीर्य, यज्ञ, दान और बड़े बड़े अनुष्ठानोंमेंसे होकर उनकी राजकहानी वर्तमान कालमें लाकर उपस्थित की गई। अन्तमें कविवर शेखरने वह दूरस्मृतिबद्ध दृष्टि लौटाकर राजाके मुखपर स्थापित की और राज्यकी सर्ती प्रजाके हृदयकी एक बहुत बड़ी अव्यक्त प्रीति भाषा और छन्दों-में मूर्त्तिमान करके सभाके बीच खड़ी कर दी। मानो दूरदूर-से हजारों लाखों प्रजाके हृदय-स्रोतोंने दौड़कर राजपूर्वजोंके इस अति-शय प्राचीन प्रासादको एक महासंगीतसे परिपूर्ण कर दिया। इसकी

प्रत्येक ईंटको मानो उन्होंने (हृदय-स्रोतोंने) स्पर्श किया, आलिंगन किया ; चुम्बन किया ; ऊपर अन्तःपुरके झरोखों तक पहुँचकर राजलक्ष्मीस्वरूप प्रासाद-लक्ष्मियोंके चरणोंमें स्नेहार्द्र भक्ति-भावसे नमस्कार किया ; और वहाँसे लौटकर राजा और राज-सिंहासनकी बड़े भारी उल्लासके साथ सैकड़ों बार प्रदक्षिणा की। अन्तमें कविने कहा—महाराज, वाक्योंसे तो हार मान सकता हूँ ; परन्तु भक्तिमें मुझे कौन हरा सकता है ? यह कहकर वे काँपते हुए बैठ गये। उस समय आँसुओंके जलसे नहाई हुई प्रजा जयजयकारसे आकाशको कम्पित करने लगी।

साधारण जनताकी इस उन्मत्तताको धिक्कारपूर्ण हँसीमें उड़ाकर पुण्डरीकजी फिर उठ खड़े हुए। उन्होंने गरजकर पूछा—वाक्यकी अपेक्षा और कौन श्रेष्ठ हो सकता है ? यह सुनकर सब लोग घड़ीभरके लिए मानो स्तब्ध हो रहे।

अब पुण्डरीकजी नाना छन्दोंमें अद्भुत पाण्डित्य प्रकाशित करके वेद वेदान्त, आगम निगम आदिसे प्रमाणित करने लगे कि विश्वमें वाक्य ही सर्वश्रेष्ठ है। वाक्य ही सत्य और वाक्य ही ब्रह्म है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी वाक्यके वशवर्ती हैं, अतएव वाक्य उनसे भी बढ़ा चढ़ा है। ब्रह्माजी अपने चारों मुखोंसे वाक्यका अन्त न पाकर आखिर चुपचाप ध्यान-परायण होकर वाक्य ढूँढ़ रहे हैं।

इस तरह पाण्डित्यपर पाण्डित्य और शास्त्रपर शास्त्रके ढेर लगाकर वाक्यके लिए एक अभ्रभेदी सिंहासन निर्माण कर दिया गया। उन्होंने वाक्यको मर्त्यलोक और सुरलोकके मस्तकपर बैठा दिया और फिर बिजलीके समान कड़ककर पूछा—तो अब बतलाइए कि वाक्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ कौन है ? इसके बाद पुण्डरीकजीने बड़े दर्पके साथ चारों ओर देखा ; और जब किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब धीरे धीरे अपना आसन ग्रहण कर लिया। पण्डितगण 'धन्य धन्य' और 'साधु

साधु' कहने लगे। राजा विस्मित हो रहे और कवि शेखरने इस विपुल पाण्डित्यके सामने अपनेको बहुत ही क्षुद्र समझा। इसके बाद आजकी सभा विसर्जित की गई।

३

दूसरे दिन शेखरका गान इस प्रकार आरम्भ हुआ—

वंशी सबसे पहले वृन्दावनमें बजी। उस समय गोपिकाओंने नहीं जाना कि वह किसने बजाई और कहाँ बजी। उन्हें भ्रम हुआ कि दक्षिण पवन बह रहा है। फिर मालूम हुआ कि उत्तरमें गोवर्धनगिरिके शिखरसे आवाज़ आ रही है। फिर जान पड़ा कि उदयाचलके ऊपर खड़ा होकर कोई मिलनेके लिए बुला रहा है। जान पड़ा कि अस्ताचलके प्रान्त भागपर बैठकर कोई विरह-शोकमें रो रहा है; जान पड़ा कि यमुनाकी प्रत्येक लहरसे वंशीकी ध्वनि उठ रही है; जान पड़ा कि आकाशके सारे तारे मानो उस वंशीके छिद्र हैं। अन्तमें कुञ्ज-कुञ्जमें, पथ-घाटमें, फूल-फलमें, जल-स्थलमें, ऊपर नीचे, अन्दर बाहर सब जगह वंशी बजने लगी। कोई यह न समझ सका कि वंशी क्या कह रही है; और यह भी कोई स्थिर न कर सका कि वंशीके उत्तरमें हृदय क्या कहना चाहता है। केवल दोनों आँखोंमें जल भर आया और एक अलोक-सुन्दर, श्याम-स्निग्ध मरणकी आकांक्षासे मानो समस्त प्राण उत्कण्ठित हो उठे।

सभाको भूलकर, राजाको भूलकर, आत्म-पक्ष प्रति-पक्षको भूलकर, यश अपयश, जय पराजय, उत्तर प्रत्युत्तर सब कुछ भूलकर शेखरने अपने निर्जन हृदयकुञ्जके बीच मानो अकेले ही खड़े होकर वंशीका यह गान गाया। उनके मनमें केवल एक ज्योतिर्मयी मानसी मूर्त्ति स्थापित थी और कानोंमें दो कमल-चरणोंकी नूपुर-ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। कवि जिस समय गान समाप्त करके हतज्ञान होकर बैठ गये तब एक

अनिर्वचनीय माधुर्य और एक बृहद् व्याप्त विरहव्याकुलतासे सभा-मन्दिर परिपूर्ण हो गया। कोई साधुवाद भी न दे सका।

जब इस भावकी प्रबलता कुछ कम हुई, तब पुण्डरीकजी सिंहासनके सम्मुख आये। राधा कौन है और कृष्ण ही कौन है? यह पूछकर उन्होंने चारों ओर नजर डाली और शिष्योंकी ओर देखकर कुछ हँसकर फिर प्रश्न किया—राधा कौन है और कृष्ण ही कौन है? इसके बाद असामान्य पाण्डित्यका विस्तार करते हुए उन्होंने स्वयं ही उत्तर देना आरम्भ किया—

राधा प्रणव ओंकार, कृष्ण ध्यान योग, और वृन्दावन दोनों भौंहोंके बीचका बिन्दु है। ईडा, सुषुम्ना, पिङ्गला, नाभि-पद्म, हृत्पद्म, ब्रह्मरंध्र आदि सभीको ला पटका। इसके बाद राधा और कृष्ण शब्दके 'क' से मूर्द्धन्य 'ण' पर्यन्त प्रत्येक अक्षरके जितने भिन्न भिन्न अर्थ हो सकते हैं, उन सबकी खूब विस्तारके साथ मीमांसा की। एक बार समझाया कि कृष्ण यज्ञ और राधिका अग्नि है। फिर बतलाया कि कृष्ण वेद और राधिका षड्दर्शन है। फिर समझाया कि कृष्ण शिक्षा राधिका दीक्षा; राधिका तर्क कृष्ण मीमांसा; राधिका उत्तर प्रत्युत्तर और कृष्ण जय-लाभ है।

यह कहकर राजाकी ओर, पण्डितोंकी ओर और अन्तमें तीव्र हास्यके साथ शेखरकी ओर देखकर पुण्डरीकजी बैठ गये।

राजा पुण्डरीककी आश्चर्यकारिणी शक्ति देखकर मुग्ध हो गये, पण्डितोंके विस्मयकी सीमा न रही और राधाकृष्णकी नई नई व्याख्याओंसे वंशीका गान, यमुनाकी कल्लोलें और प्रेमका मोह बिलकुल दूर हो गया। मानो किसी मनुष्यने पृथ्वीपरसे वसंतका हरा रंग पोंछकर उसके बदले शुरूसे अखीर तक पवित्र गोमय लीप दिया!

शेखरने भी अपने इतने दिनोंके समस्त गीतोंको व्यर्थ समझा। इसके बाद उनमें शक्ति न रही कि कुछ गावें। उस दिनकी सभा भी भंग होगई।

४

दूसरे दिन पुण्डरीकने व्यस्त और समस्त, द्विव्यस्त और द्विसमस्तक, वृत्त, तार्क्ष्य, सौत्र, चक्र, पद्म, काकपद, आद्युत्तर, मध्योत्तर, अन्त्योत्तर, वाक्योत्तर, वचनगुप्त, मात्राच्युतक, च्युतदत्ताक्षर, अर्थगूढ़, स्तुति, निन्दा, अपह्नुति, शुद्धापभ्रंश, शाब्दी, कालसार, प्रहेलिका आदिका अद्भुत शब्द-चातुर्य दिखाया जिसे सुनकर सारी सभाके लोग विस्मित हो रहे।

शेखरकी वाक्यरचना बहुत ही सरल थी। उसे सर्वसाधारण सुख दुःखमें और उत्सव आनन्दमें निरन्तर पढ़ा करते थे। आज उन्होंने साफ समझा कि उसमें कोई खास खूबी नहीं है। मानो यदि वे चाहते तो स्वयं भी वैसी रचना कर सकते; केवल अनभ्यास, अनिच्छा, और अनवसर आदि कारणोंसे ही नहीं कर सके; नहीं तो उसमें कुछ ऐसी विशेष नूतनता नहीं है। वह दुरूह भी नहीं है; उससे पृथ्वीके लोगोंको कोई नूतन शिक्षा भी नहीं मिलती और न कोई लाभ ही होता है। किन्तु आज जो कुछ सुना, वह अद्भुत था; और कल जो कुछ सुना था, उसमें भी बहुत गहरे विचार और सीखने समझनेकी बातें थीं। पुण्डरीकके पाण्डित्य और चातुर्य्यके सामने उन्हें अपना कवि नितान्त बालक और साधारण मनुष्य प्रतीत होने लगा।

मगर-मच्छोंके पूँछ फटकारनेसे पानीमें जो भीषण आन्दोलन हुआ करता है, उसके प्रत्येक आघातको जिस तरह सरोवरका कमल अनुभव कर सकता है, उसी तरह शेखरने अपने हृदयमें चारों ओर बैठे हुए सभा-जनोंके मनका भाव अनुभव किया।

आज अन्तिम दिन है। आज जय-पराजयका निर्णय होगा। राजाने अपने कविकी ओर देखा। उसका अर्थ था कि आज निरुत्तर रहनेसे काम न चलेगा, तुम्हें अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करना चाहिए।

शेखर एक ओर खड़े हो गये और उन्होंने ये थोड़ेसे वाक्य कहे—हे वीणापाणि श्वेतभुजा, यदि तुम अपने कमल-वनको सूना छोड़कर मल्लभूमिमें आ खड़ी होओगी, तो तुम्हारे चरणोंमें आसक्ति रखनेवाले अमृत-पिपासी भक्तजनोंकी क्या दशा होगी? इन वाक्योंको उन्होंने अपने मुँहको कुछ ऊँचा उठाकर बहुत ही करुण स्वरमें कहा। मानो श्वेतभुजा वीणा-पाणि नीचे नेत्र किये हुए राजान्तःपुरके झरोखेके सामने ही खड़ी हो।

तब पुण्डरीकने उठकर बड़े जोरसे हँस दिया और 'शेखर' शब्दके अन्तिम दो अक्षर ग्रहण करके अनर्गल श्लोक-रचना कर डाली। कहा कि पद्मवनके साथ खरका क्या सम्पर्क? और संगीतकी चाहे जितनी चर्चा हो, फिर भी उक्त प्राणी क्या लाभ उठा सकता है? सरस्वतीका अधिष्ठान तो पुण्डरीक ही है; महाराजके राज्यमें उसने ऐसा क्या अपराध किया है जो इस देशमें वह खर-वाहन बनाकर अपमानित की जा रही है?

यह प्रत्युत्तर सुनकर पण्डितगण बड़े जोरोंसे हँस पड़े। सभासदोंने भी उसमें योग दिया और उनकी देखादेखी सभी लोग जिन्होंने समझा या न समझा, हँसने लगे।

इसका ठीक उत्तर देनेकी आशासे राजा अपने कवि-सखाको बार बार अंकुशके समान तीक्ष्ण दृष्टिसे विद्ध करने लगे। परन्तु शेखरने उसकी ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, वे अटल भावसे बैठे रहे।

तब राजा मन ही मन शेखरसे अत्यन्त रुष्ट होकर सिंहासनसे उतर पड़े और अपने गलेसे मोतियोंकी माला उतारकर उन्होंने पुण्डरीकके

गलेमें पहना दी। सभामें बैठे हुए सभी लोग धन्य धन्य कहने लगे। इसी समय अन्तःपुरसे एक साथ वलय, कंकण और नूपुरोंका शब्द सुनाई दिया। उसे सुनकर शेखर आसनसे उठ बैठे और धीरे धीरे सभा-मन्दिरसे बाहर हो गये।

५

कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रि है। चारों ओर सघन अन्धकार है। दक्षिण पवन फूलोंकी गन्ध लेकर उदार विश्व-बन्धुके समान खुले हुए झरोखोंमें-से घर घरमें प्रवेश कर रहा है।

शेखरने अपने सामने, अपनी समस्त पोथियोंका ढेर लगा लिया और उनमेंसे चुन चुनकर अपने रचे हुए ग्रन्थ जुदा कर लिये। बहुत दिनोंकी बहुत-सी रचनाएँ थीं। उनमेंसे बहुत-सी रचनाओंको तो वे स्वयं ही भूल गये थे। उन सबको उलट पलटकर यहाँ वहाँसे पढ़-कर देखने लगे। आज उन्हें वह समस्त रचना अकिञ्चित्कर-सी जान पड़ी।

उन्होंने लम्बी साँस लेकर कहा—सारे जीवनकी क्या यही कमाई है? इसमें कुछ उक्तियों, छन्दों और तुकबन्दियोंके सिवाय और है ही क्या? आज वे यह नहीं देख सके कि उसमें कोई सौन्दर्य, मानव-जातिका कोई स्थायी आनन्द, विश्व-संगीतकी कोई प्रतिध्वनि, या उनके हृदयका कोई गम्भीर आत्म-प्रकाश निबद्ध है। रोगीको जिस तरह कोई खाद्य रुचिकर नहीं होता, उसी तरह आज उनके हाथके निकट जो कुछ आया, उस सभीको उन्होंने ठुकराकर फेंक दिया। उन्हें इस अँधेरी रातमें राजाकी मित्रता, लोगोंकी प्रशंसा, हृदयकी दुराशा, कल्पनाकी कुहुक आदि सारी बातें शून्य विडम्बना-सी लगने लगीं।

तब वे प्रत्येक पोथीको फाड़ फाड़कर अपने सामने जलते हुए अग्नि-

कुण्डमें डालने लगे। एकाएक उन्हें एक दिल्लगी सूझी। उन्होंने हँसते-हँसते कहा—जिस तरह बड़े बड़े राजा अश्वमेध किया करते हैं उसी तरह आज मैं यह काव्य-मेध-यज्ञ कर रहा हूँ। किन्तु तत्काल ही सोचा कि यह उपमा ठीक नहीं बैठी। अश्वमेध तो उस समय होता है, जब अश्वमेधका अश्व सर्वत्र विजय प्राप्त करके आता है। परन्तु मैं तो उस समय यह काव्य-मेध करने बैठा हूँ, जिस समय मेरा कवित्व पराजित हुआ है। अच्छा होता, यदि यह यज्ञ बहुत दिन पहले किया जाता।

धीरे धीरे उन्होंने अपने सभी ग्रन्थ अग्निदेवको समर्पित कर दिये। अग्नि धाँय धाँय करके जलने लगी और वे विवेकके साथ अपने दोनों खाली हाथ आकाशकी ओर करके कहने लगे—हे सुन्दरि अग्नि-शिखा! यह सब तुम्हींको दिया, तुम्हींको दिया, तुम्हींको दिया। इतने दिन तुम्हींको समस्त आहुतियाँ देता आ रहा था। आज एक साथ शेष कर दिया। बहुत दिनोंसे तुम मेरे हृदयमें जल रही थीं। हे मोहिनी वह्निरूपिणि! यदि सोना होता तो चमक उठता। किन्तु देवि! मैं एक तुच्छ तृण हूँ, इसीलिए आज भस्म हो गया।

रात्रि बहुत बीत गई। शेखरने अपने घरकी सारी खिड़कियाँ खोल दीं। वे जिन जिन फूलोंको पसन्द करते थे, सन्ध्याको बगीचेसे संग्रह करके ले आये थे। वे सब श्वेत थे—जूही, बेला और गन्धराज। उन्होंने उन सबको मुट्ठी मुट्ठी लेकर अपने निर्मल बिछौनेपर फैला लिया। घरके चारों ओर दीपक जला दिये।

इसके बाद एक वनस्पतिका विषरस मधुके साथ मिलाकर निश्चिन्तताके साथ पी लिया और धीरे धीरे अपनी शय्या पर जाकर शयन किया। शरीर अवश हो गया और नेत्र मुँदने लगे।

नूपुर बजे। दक्षिण पवनके साथ केश-गुच्छोंकी सुगन्धिने भी घरमें प्रवेश किया।

कविने आँखें बंद किये हुए कहा—देवि, क्या भक्तके प्रति दया की? क्या इतने दिनोंके बाद आज दर्शन देने आई?

एक सुमधुर कण्ठसे उत्तर मिला—कवि, हाँ मैं आई।

शेखरने चौंककर आँखें खोल दीं। देखा कि शय्याके समीप एक सुन्दरी रमणी खड़ी है।

वे मृत्युसमाच्छन्न डबडबाई हुई आँखोंसे साफ नहीं देख सके। उन्हें मालूम हुआ कि मेरे हृदयकी वही छायामयी प्रतिमा अन्दरसे बाहर आकर मृत्युके समय मेरे मुँहकी ओर स्थिर नेत्रोंसे देख रही है।

रमणीने कहा—मैं राजकन्या अपराजिता हूँ।

कवि सारी शक्ति लगाकर उठ बैठे।

राजकन्याने कहा—राजाने तुम्हारा उचित निर्णय नहीं किया। वास्तवमें तुम्हारी ही जीत हुई है। इसीलिए, कविवर, मैं आज तुम्हें जयमाला पहनाने आई हूँ। यह कहकर अपराजिताने अपने गलेसे अपने हाथों गूँथी हुई पुष्पमाला उतार कर कविके गलेमें पहना दी। मरणासन्न कविका शरीर शय्यापर गिर गया।

पड़ोसिन

मेरी पड़ोसिन बाल-विधवा है। वह मानो शिशिरके आँसुओंसे भीगी हुई कुन्द-कलीके समान डंठलसे अलग हो गई है और किसीकी सुहाग-रातके लिए नहीं, बल्कि केवल देव-पूजाके लिए ही उत्सर्ग की गई है।

मैं मन ही मन उसकी पूजा करता हूँ। उसके प्रति मेरे हृदयका जो भाव है, उसे 'पूजा' को छोड़कर मैं और किसी सहज शब्दके द्वारा प्रकाशित नहीं करना चाहता।

इस विषयमें मेरे अन्तरङ्ग मित्र नवीन भी कुछ नहीं जानते और इस तरह मैंने जो अपने गहरे आवेगको छिपा कर निर्मल रख छोड़ा था, इसका मुझे गर्व था।

किन्तु हृदयका आवेग पहाड़ी नदीके समान, अपने जन्म-शिखरमें

रुक कर नहीं रहना चाहता। वह किसी न किसी उपायसे बाहर निकलनेकी चेष्टा करता है और यदि इस चेष्टामें सफल नहीं होता तो छातीमें वेदना उत्पन्न करता है। इसीसे मैं सोचता था कि अपने आवेगके भावको कवितामें प्रकाशित करूँ। परन्तु क्या कहूँ, कुण्ठिता लेखनीने आगे बढ़नेकी इच्छा ही नहीं की।

ठीक इसी समय एक आश्चर्यकी बात यह हुई कि मेरा मित्र नवीन माधव जिस तरह एकाएक भूकम्प आ जाता है उस तरह तेजीके साथ कविता करनेमें प्रवृत्त हो गया।

इसके पहले उस बेचारेपर ऐसी दैवी विपत्ति कभी न आई थी; और इसलिए वह इस अभिनव आन्दोलनके लिए जरा भी तैयार न था। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि न उसे छन्दका ज्ञान है और न तुकबन्दीका; फिर भी उसे हिचकिचाहट नहीं हुई। कविता मानो बुढ़ापेकी दूसरे ब्याहकी स्त्रीके समान उसके सिर चढ़ बैठी। आखिर वह सहायता और संशोधनके लिए मेरी सेवामें उपस्थित हुआ।

उसकी कविताके विषय नये नहीं थे, पर पुराने भी नहीं थे। अर्थात् उन्हें चिरनूतन भी कह सकते हैं और चिरपुरातन कहनेमें भी कोई हानि नहीं है। जब मैंने देखा कि वह एक प्रियतमाके प्रति लिखी हुई प्रेमकी कविता है, तब मैंने उसे एक धक्का दे हँसकर पूछा—बतलाओ तो कि वह है कौन?

नवीनने हँसकर कहा—अब तक तो कुछ पता नहीं चला है।

नवीनको सहायता देनेके कार्यमें मुझे बहुत ही आराम मिला। उसकी काल्पनिक प्रियतमाके प्रति मैं अपने रुके हुए आवेगका प्रयोग करने लगा। जिस तरह बिना बच्चेवाली मुर्गी हंसके अंडे पाकर छाती फैलाकर उन्हें सेने लगती है, उसी तरह मैं भी नवीन माधवके भावोंको

अपने हृदयका सारा उत्ताप देकर विकसित करने लगा। उस अनाड़ीकी रचनाको मैं ऐसी खूबीके साथ संशोधित करने लगा कि उसका प्रायः पन्द्रह आना भाग मेरी रचना बन जाने लगा।

नवीनने विस्मित होकर कहा—ठीक यही बात तो मैं भी कहना चाहता हूँ, परन्तु कह नहीं सकता। भला तुम्हें ये सब भाव कहाँसे सूझ जाते हैं!

मैंने कविके समान उत्तर दिया—कल्पनासे। कारण, सत्य नीरव है, कल्पना ही वाचाल है। सत्य-घटना भावोंके झरनेको पत्थरके समान दबा रखती है, परन्तु कल्पना उसका मार्ग खोल देती है।

नवीनने अपना मुँह गंभीर बनाकर और कुछ सोचकर कहा—यही तो जान पड़ता है। ठीक है।—इसके बाद और भी कुछ समय तक सोचकर कहा—ठीक! ठीक!

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मेरे प्यारमें एक प्रकारका कातर संकोच था, इसीलिए मैं अब तक अपनी तरफसे कुछ भी नहीं लिख सका था। परन्तु जब नवीनको परदेके भीतर बीचमें बैठा लिया, तब मेरी लेखनीने भी मुख खोल दिया। वे रचनाएँ मानो रससे लबालब भरकर उत्तापसे उफनने लगीं।

नवीनने कहा—ये तुम्हारी रचनाएँ हैं। अतएव इन्हें मैं तुम्हारे ही नामसे प्रकाशित कराऊँगा।

मैंने कहा—खूब! लिखी हुई तो तुम्हारी ही हैं न? मैंने तो थोड़ा-सा रद्दोबदल ही किया है।

धीरे धीरे नवीनका भी यही विश्वास हो गया।

मैं इस बातसे इंकार नहीं कर सकता कि जिस तरह ज्योतिषी नक्षत्रोंके उदयकी अपेक्षा करता हुआ आकाशकी ओर देखा करता है, मैं

भी उसी तरह बीच बीचमें अपने पड़ोसके घरकी खिड़कीकी ओर ताका करता और कभी कभी भक्तका वह व्याकुल दृष्टिक्षेप सार्थक भी हो जाया करता। उस कर्मयोगनिरता ब्रह्मचारिणीकी सौम्य मुखश्रीसे शान्त और स्निग्ध ज्योति प्रतिबिम्बित होकर मुहूर्त्त मात्रमें मेरे सारे चित्त-क्षोभको मिटा देती।

किन्तु उस दिन एकाएक मैंने क्या देखा! हमारे चन्द्रलोकमें भी क्या इस समय अग्न्युत्पात मौजूद है? क्या वहाँकी जनशून्य समाधि-मग्न गिरिगुहाओंका सारा वह्निदाह अब भी शान्त नहीं हुआ है?

उस दिन वैसाख महीनेके तीसरे प्रहर ईशान कोणमें मेघ सघन हो रहे थे। आँधी आनेको थी और बीच बीचमें बिजली चमक जाती थी। मेरी पड़ोसिन खिड़कीके पास अकेली खड़ी थी। उस दिन मैंने उसकी आकाशकी ओर लगी हुई दृष्टिमें दूर तक फैली हुई सघन वेदनाका दर्शन किया।

मुझे निश्चय हो गया कि मेरे चन्द्रलोकमें इस समय भी उत्ताप है। इस समय भी वहाँ उष्ण निःश्वास समीरित है। देवताके लिए मनुष्य नहीं है, मनुष्यके लिए ही देवता है। उसके उन दोनों नेत्रोंकी विशाल व्याकुलता उस दिनकी आँधीसे घबराये हुए पक्षीकी तरह उड़ी जा रही है। किधर? स्वर्गकी ओर नहीं, मनुष्यके हृदयरूपी घोंसलेकी ओर।

उत्सुक और आकांक्षासे उद्दीप्त वह दृष्टिपात देखनेके बाद मेरे लिए अपने अशान्त चित्तको सुस्थिर रख सकना कठिन हो गया। उस समय केवल दूसरेकी कच्ची कविताका संशोधन करनेसे तृप्ति नहीं मिली, किसी न किसी तरहका कोई काम करनेको जी चाहा।

तब मैंने संकल्प किया कि अपने देशमें विधवाविवाह प्रचलित

करनेके लिए मैं अपनी सारी शक्तियाँ लगा दूँगा। केवल व्याख्यान झाड़कर और लेख ही लिखकर नहीं, बल्कि आर्थिक सहायता देनेके लिए भी मैंने अपना हाथ बढ़ाया।

नवीन मेरे साथ तर्क करने लगा। उसने कहा—चिर वैधव्यके भीतर एक पवित्र शान्ति है और एकादशीकी क्षीण ज्योत्स्नालोकित समाधि-भूमिके समान एक विराट् रमणीयता है। विवाहकी संभावना मात्रसे ही क्या वह शान्ति नष्ट नहीं हो जायगी?

इस प्रकारकी कवित्वपूर्ण बातें सुनकर मुझे गुस्सा आ जाता है। जो लोग दुर्भिक्षके मारे मर रहे हैं, उनके आगे यदि कोई आहारपुष्ट आदमी खाद्यकी स्थूलताके प्रति घृणा प्रकाशित करके फूलोंकी गन्ध और पक्षियोंके गानसे उनका पेट भर देना चाहे, तो बतलाइए वह कैसा मालूम होगा?

मैंने क्रुद्ध होकर कहा—देखो नवीन, आर्टिस्ट (चित्रकार) लोग कहा करते हैं कि दृश्यके हिसाबसे जले हुए मकानमें बड़ा भारी सौन्दर्य है। किन्तु घरको केवल चित्रकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता, उसमें निवास करना पड़ता है—अतएव आर्टिस्ट चाहे जो कहें, परन्तु उसकी मरम्मत करना आवश्यक है। तुम तो वैधव्यपर दूरसे ही दिव्य कविता करना चाहते हो, परन्तु तुम्हें यह ख़याल नहीं आता कि उसके भीतर एक आकांक्षापूर्ण मानव-हृदय अपनी विचित्र वेदनाओंको लिये हुए निवास कर रहा है।

मैंने समझा था कि नवीन माधव किसी तरह मेरे दलमें नहीं आ सकेगा और इसी कारण मैंने उस दिन कुछ अधिक तपाकके साथ बात-चीत की। किन्तु एकाएक देखा कि मेरे व्याख्यानके अन्तमें नवीन माधव परास्त हो गया, उसने केवल एक ही गहरी साँस लेकर मेरी सारी बातें

मान लीं ; और मेरे मस्तकमें उनके सिवाय जो अनेक अच्छी अच्छी युक्तियाँ इकट्ठी हो रही थीं उनके प्रकट करनेका उसने अवकाश ही नहीं दिया !

कोई एक सप्ताहके बाद नवीनने आकर कहा—यदि तुम सहायता दो, तो मैं स्वयं विधवाविवाह करनेके लिए तैयार हूँ ।

यह सुनकर मैं उछल पड़ा और नवीनको गले लगाकर बोला—इस कार्यमें जो कुछ ख़र्च होगा, मैं अपने पाससे दूँगा । तब नवीनने अपना सारा इतिहास सुनाया ।

मालूम हुआ कि उसकी प्रियतमा काल्पनिक नहीं है । कुछ दिनोंसे वह एक विधवाको दूरसे ही चाहने लगा है । यह बात उसने अब तक किसीपर प्रकट नहीं होने दी है । जिन मासिक-पत्रोंमें नवीनकी—अर्थात् मेरी—कविता प्रकाशित होती है, वे सब जहाँ चाहिए, वहाँ जाकर पहुँच जाते हैं । वे कविताएँ व्यर्थ भी नहीं गईं । बिना मिले-जुले चित्त आकर्षित करनेका यह एक नया उपाय मेरे मित्रने आविष्कृत कर डाला है ।

किन्तु नवीनका कथन है कि उसने षड्यंत्र रचकर यह चालाकी नहीं की । बल्कि उसका विश्वास था कि उक्त विधवा लिखना पढ़ना भी नहीं जानती । विधवाके भाईके नाम बिना मूल्य और बिना अपनी सहीके जो मासिक-पत्र भेजे जाते थे सो केवल अपने मनको सान्त्वना देनेके लिए ! इसे एक तरहका पागलपन ही समझना चाहिए । उन्हें भेजते समय नवीन सोच लेता कि देवताके उद्देश्यसे पुष्पाञ्जलि छोड़ दी गई, अब वे चाहे जानें चाहे न जानें, और चाहे ग्रहण करें चाहे न करें ।

विधवाके भाईके साथ किसी न किसी बहानेसे नवीनने जो मित्रता

कर ली, उसमें भी वह कहता है कि मेरा कोई उद्देश्य न था। यह कौन नहीं जानता कि जिसको प्यार किया जाता है उसके निकटवर्त्तीका संग-साथ भी अच्छा ही मालूम होता है ?

आखिर भाईकी कठिन बीमारीके उपलक्षसे उसकी बहनके साथ नवीनकी किस प्रकार मुलाकात हुई, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। कविके साथ कविताके अवलम्बित विषयका प्रत्यक्ष परिचय हो गया और तब कविताके संबंधमें बहुत कुछ आलोचना भी हो गई; परन्तु वह आलोचना केवल छपी हुई कविताओंमें ही आबद्ध न रही।

सम्प्रति मेरे साथ तर्कमें परास्त होकर नवीन उस विधवाके समक्ष विवाहका प्रस्ताव कर बैठा है। पहले तो वह किसी तरह राजी नहीं हुई; परन्तु जब नवीनने मुझसे सुनी हुई सारी युक्तियोंका प्रयोग किया और उनके साथ अपनी आँखोंकी दो चार बूँदें भी मिला दीं, तब उसे हार माननी पड़ी। अब विधवाके अभिभावक खर्चके लिए कुछ रुपये चाहते हैं।

मैंने कहा—रुपयोंकी क्या चिन्ता है! अभी ले जाओ।

नवीनने कहा—इसके सिवाय पिताजी मुझे जो मासिक खर्च दिया करते हैं विवाहके बाद चार छः महीने तक उसे भी वे बन्द कर देंगे। सो उतने समय तक हम दोनोंके खर्चका भी प्रबन्ध तुम्हें कर देना होगा। मैंने बिना कुछ कहे सुने एक चेक काट दिया। फिर कहा—अब उसका नाम बतला दो। जब मेरे साथ कोई प्रतियोगिता नहीं है, तब तुम्हें उसका परिचय देनेमें डर ही क्या है! मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं उसके नाम कविता भी नहीं लिखूँगा और यदि कभी लिखूँगा भी, तो उसके भाईके पास न भेजकर तुम्हारे पास भेज दूँगा!

नवीनने कहा—अजी, मैं इससे नहीं डरता। विधवा विवाहकी

लज्जासे बहुत ही कातर है, इसलिए उसने बहुत बहुत निषेध कर दिया है कि मैं तुमसे उसकी चर्चा न करूँ। किन्तु अब ढक रखना व्यर्थ है। वह तुम्हारी ही पड़ोसिन है और १९ नंबरके मकानमें रहती है।

यदि मेरा हृत्पिण्ड लोहेका बायलर होता तो इस धक्केसे तत्काल ही फट जाता। थोड़ी देरमें कुछ प्रकृतिस्थ होकर मैंने पूछा—विधवा-विवाहको वह पसन्द करती है?

नवीनने हँसकर कहा—इस समय तो करती है!

मैंने कहा—केवल कविता पढ़कर ही वह तुमपर मुग्ध हो गई?

नवीनने कहा—क्यों, मेरी वे कविताएँ क्या कुछ कम प्रभावशालिनी थीं?

मैंने मन ही मन कहा—धिक्!

परन्तु वह धिक्कार किसको? उसे, या मुझे, या विधाताको?

राजतिलक

जिस समय नवेन्दुशेखरके साथ अरुणलेखाका विवाह हुआ, उस समय होम-धूमके बीचमेंसे भगवान प्रजापति जरा-सा मुसकरा दिये। परन्तु प्रजापतिके लिए जो एक मामूली खिलवाड़ है, वह हमारे लिए सदा कौतुककी ही बात नहीं हो सकती।

नवेन्दुशेखरके पिता पूर्णेन्दुशेखर अँगरेज़ी अमलदारीके बहुत ही विख्यात पुरुष थे। वे इस भव-समुद्रमें केवल फर्शी सलामका डाँड़ चलाकर 'राय बहादुर' उपाधिके उत्तुङ्ग मरुतट तक पहुँच गये थे। यद्यपि उनके पास और भी दुर्गमतर सम्मान-पथका पाथेय था; किन्तु पचपन वर्षकी उमरमें बिलकुल समीपवर्त्ती उपाधिके कुहरेसे ढके हुए गिरि-शिखरकी ओर करुण-लोलुप दृष्टि लगाये हुए यह राजकृपापात्र व्यक्ति एकाएक खिताब-वर्जित लोकको चल दिया और उसकी बहु-सलाम-शिथिल ग्रीवा श्मशान-शय्यापर विश्राम करने लगी।

किन्तु विज्ञान कहता है कि शक्तिका नाश नहीं होता, केवल स्थानान्तर और रूपान्तर होता है। चंचला लक्ष्मीकी अचंचला सखी 'सलाम-शक्ति' पिताके कंधेसे उतरकर पुत्रके कंधेपर आरूढ़ हो गई और नवेन्दुका नवीन मस्तक लहरोंसे टकराते हुए कद्दूके समान अँगरेज़ कर्मचारियोंके द्वारपर बिना विश्राम लिये उठने और गिरने लगा।

पहली स्त्रीके निस्संतान अवस्थामें मर जानेपर जिस परिवारमें इन्होंने दूसरा विवाह किया, उसका इतिहास एक नये ही ढँगका है।

उस परिवारके बड़े भाई प्रमथनाथ परिचित जनोंकी प्रीति और कुटुम्बी जनोंके आदरके स्थल थे। घरके और अड़ोस-पड़ोसके लोग उनको सब विषयोंमें अनुकरणीय समझते थे।

प्रमथनाथ विद्यामें बी० ए० और बुद्धिमें विचक्षण थे, किन्तु बड़ी तनख्वाह और कलमके जोरकी कोई परवा न करते थे। उनके पास बड़प्पनका बल भी अधिक नहीं था; क्योंकि अँगरेज लोग उन्हें जितना दूर रखते थे, वे भी उनसे उतनी ही दूर रहकर चलते थे। अतएव अपने घरके कोने और परिचित जनोंमें ही वे जगमगाते थे। दूरके लोगोंकी दृष्टि आकर्षित करनेकी कोई शक्ति उनमें नहीं थी।

यही प्रमथनाथ एक बार विलायत गये, वहाँ लगभग तीन वर्ष तक घूमवाम कर लौट आये और अँगरेजोंके सौजन्यपर मुग्ध होकर भारतवर्षके सारे अपमानों और दुःखोंको भूलकर अँगरेजी ठाट-वाटसे रहने लगे।

पहले पहल उनके इस ठाटसे भाई बहन कुछ कुण्ठितसे हुए, परन्तु कुछ ही दिनोंके बाद वे भी कहने लगे—भैयाको अँगरेजी कपड़े जितने अच्छे मालूम होते हैं, उतने और किसीको नहीं मालूम होते। इस तरह धीरे धीरे अँगरेजी वस्त्रोंका गौरव-गर्व उस परिवारमें स्थायी हो गया।

प्रमथनाथ विलायतसे यह सोचकर आये कि मैं लोगोंको इस बातका अपूर्व दृष्टान्त दिखाऊँगा कि अँगरेजोंके साथ, बराबरीकी रक्षा करते हुए, किस तरहका व्यवहार किया जा सकता है। जो लोग यह कहा करते हैं, कि नत हुए बिना अँगरेजोंके साथ मेल-मिलाप नहीं होता, वे अपनी हीनता प्रकाशित करते हैं और अँगरेजोंको व्यर्थ ही दोषी बनाते हैं।

प्रमथनाथने विलायतके बड़े बड़े लोगोंसे अनेक परिचयपत्र और प्रशंसापत्र लाकर भारतवर्षके अँगरेजोंमें थोड़ी-सी प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर ली। यहाँ तक कि बीच बीचमें वे अपनी स्त्रीके सहित अँगरेजोंकी चा, डिनर, और हँसी-मजाकका भी कुछ हिस्सा पाने लगे। इस सौभाग्य-मदकी मत्ततासे उनकी रगोंमें रक्तका प्रवाह कुछ तेजीके साथ होने लगा।

इसी समय एक नई रेलवे लाइन खोलनेके लिए रेलवे कम्पनीका निमंत्रण पाकर छोटे लाटके साथ देशके अनेक राज-प्रसाद-गर्वित बड़े आदमियोंने गाड़ीपर लदकर उस नये लोह-पथकी यात्रा की। प्रमथनाथ भी उनमेंसे एक थे।

लौटनेके समय एक अँगरेज इन्स्पेक्टरने उक्त देशी बड़े आदमियोंको बहुत ही अपमानके साथ एक विशेष गाड़ी परसे उतार दिया। अँगरेज-वेषधारी प्रमथनाथको भी गाड़ीसे उतरनेको तैयार देखकर इन्स्पेक्टरने कहा—आप क्यों उतरते हैं? बैठिए न।

प्रमथनाथ पहले तो इस विशेष सम्मानसे फूल उठे; परन्तु जब गाड़ी चल दी और तृण-हीन कर्षण-धूसर पश्चिम प्रान्तकी सीमासे म्लान सूर्यास्तकी आभा सकरुण रक्तिम लज्जाके समान समस्त देशके ऊपर फैल गई और जब वे अकेले बैठे बैठे खिड़कियोंमेंसे अनिमेष नेत्रोंसे वनोंकी

ओटमें छिपी हुई कुण्ठिता भारत-भूमिका निरीक्षण करने लगे, तब धिक्कार-के मारे उनका हृदय फटने लगा और दोनों नेत्रोंसे अग्नि-ज्वालामयी अश्रुधारा बहने लगी।

उन्हें एक कहानी याद आ गई। एक गधा राजपथसे होकर देव-प्रतिमाका रथ खींच रहा था और पथिकवर्ग उसके सामने धूलमें लोट कर प्रतिमाको प्रणाम करता था। मूर्ख गधा अपने मनमें सोचता था कि सब लोग मेरा ही आदर कर रहे हैं।

प्रमथनाथने मन ही मन कहा कि उस गधेमें और मुझमें इतना ही अन्तर है कि मैंने आज समझ लिया है कि सम्मान मेरा नहीं, मेरे शरी-रके बोझका किया जाता है।

प्रमथनाथने घर आकर सब बालबच्चोंको इकट्ठा किया और अग्नि जलाकर विलायती कपड़े-लत्तोंको उसमें एक एक करके डालना शुरू किया। अग्नि-शिखा जितनी ही ऊँची उठने लगी, बच्चे उतने ही आन-न्दके साथ नृत्य करने लगे।

तबसे प्रमथनाथ तो अँगरेजोंकी चायका चम्मच और रोटीका टुकड़ा छोड़कर फिरसे घरके कोनेके दुर्गमें दुर्गम होकर बैठ रहे; परन्तु पूर्वोक्त अपमानित उपाधिधारी लोग पहलेके ही समान फिर अँगरेजोंके द्वारपर सलाम बजाते नजर आने लगे।

दैवदुर्योगसे अभागे नवेन्दुशेखरको इसी परिवारकी मँझली बहनके साथ शादी करनी पड़ी। इस घरकी लड़कियाँ जिस तरह लिखना पढ़ना जानती थीं, उसी तरह देखने सुननेमें भी सुन्दरी थीं। नवेन्दुने सोचा कि मैंने बहुत बड़ी विजय पाई।

किन्तु यह बात प्रमाणित करनेमें उन्होंने देरी नहीं की कि मुझे पाकर तुम लोगोंको भी कम विजय प्राप्त नहीं हुई है। समय समय पर

कई साहब बहादुरोंने उनके पिताको जो जो चिट्ठियाँ लिखी थीं, वही अब मानो बिलकुल भूलसे आप ही आप उनकी जेबमेंसे गिरने लगीं और सालियोंके हाथ तक पहुँचने लगीं। जब सालियोंके सुकोमल बिम्बोष्ठोंके भीतरसे तीक्ष्ण हँसी भड़कदार मखमली म्यानके भीतरके चमचमाते हुए छुरेके समान दिखलाई देने लगी, तब अभागे नवेन्दुको होश आया कि स्थान, काल और पात्र ठीक नहीं हैं। समझा कि मैंने बहुत बड़ी भूल की।

सालियोंमें जो सबसे ज्येष्ठा और रूप-गुणमें श्रेष्ठा थी, उसने एक दिन शुभ मुहूर्त्त देखकर नवेन्दुके सोनेके कमरेके एक ताकमें दो जोड़े विलायती बूट सिन्दूर-मण्डित करके स्थापित कर दिये और उनके सामने फूल चन्दन और दो जलते हुए दीपक रखकर धूप जला दी। ज्यों ही नवेन्दुने घरमें प्रवेश किया, त्यों ही दो सालियोंने उनके कान पकड़कर कहा कि आप अपने इष्ट देवको प्रणाम कीजिए। इनकी कृपासे आपकी पद-वृद्धि होगी।

तीसरी साली किरणरेखाने बहुत दिन परिश्रम करके एक ऐसी चादर तैयार की थी जिसमें जॉन्स, स्मिथ, ब्राऊन, टाम्सन आदि एक सौ प्रचलित अँगरेजी नाम लाल सूतसे काढ़े गये थे और एक दिन बड़े समारोहके साथ उसने यह नामावलीयुक्त चादर नवेन्दु बाबूको भेंट कर दी।

चौथी साली शशांकरेखाने, जो उमरमें छोटी थी, कहा—जीजाजी, मैं एक जपमाला तैयार कर दूँगी। आपको साहबोंका नाम जपनेमें सुभीता हो जायगा।

इसपर उसकी बड़ी बहनोंने डाँटकर कहा—चल! तुझे इस तरह छोटे मुँह बड़ी बात न करनी चाहिए।

नवेन्दुको मन ही मन क्रोध भी आता था और लज्जा भी होती थी। किन्तु वे सालियोंको छोड़ नहीं सकते थे। खासकर उनकी बड़ी साली बहुत ही सुन्दरी थी। उसमें मधु भी था और काँटा भी। उसकी मादकता और जलन दोनों ही मनको पागल कर देती थीं। जले हुए पंखोंवाला पतंग क्रोधसे भनभनाता भी है और अन्ध अबोधके समान चारों ओर घूमता भी है।

अन्तमें सालियोंके संसर्गके प्रबल मोहमें पड़कर नवेन्दु बाबू इस बातसे बिलकुल इन्कार करने लगे कि वे साहब लोगोंके परम भक्त हैं। वे जिस दिन बड़े साहबको सलाम करने जाते, उस दिन सालियोंसे कह जाते कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका व्याख्यान सुनने जा रहे हैं और जब दारजिलिंगसे लौटे हुए मेजो साहबके स्वागतके लिए स्टेशनपर जाते, तब कह जाते कि मेजो (मँझले) मामासे मिलने जा रहा हूँ।

साहब और साली, इन दो नौकाओंपर पैर रखकर हतभागे नवेन्दुबाबू बहुत ही मुश्किलमें पड़ गये। सालियोंने मन ही मन कहा कि तुम्हारी दूसरी नौकाको नष्ट किये बिना हम चैन नहीं लेनेकी।

यह खबर बड़ी तेजीके साथ फैल गई कि महारानीके आगामी जन्म दिनके अवसरपर नवेन्दुबाबू खिताब-स्वर्ग-लोककी पहली सीढ़ी 'राय-बहादुर' पदवीपर पदार्पण करेंगे। किन्तु वह बेचारे इतने बड़े सम्मान-लाभका आनन्दपूर्ण समाचार अपनी सालियोंके सामने प्रकट नहीं कर सके। केवल एक दिन शरत्-शुक्ल-पक्षकी सन्ध्याको सर्वनाशी चन्द्रमाके प्रकाशमें उनसे अपने चित्तका आवेग नहीं रोका गया और उन्होंने अपनी स्त्री को यह शुभ संवाद सुना ही डाला। दूसरे दिन उनकी स्त्री अपनी बड़ी बहनके यहाँ गई और आँसू भरकर अपना असन्तोष प्रकट करने लगी। लावण्यलेखाने कहा—यह तो बहुत अच्छा हुआ! राय-

बहादुर हो जानेसे तेरे पतिको कुछ दुम तो निकल ही न आवेगी। फिर लज्जित होनेका कारण ?

अरुणलेखा बार बार कहने लगी—नहीं बहन, और चाहे जो हो, मैं रायबहादुरनी तो न बनूँगी।

बात यह थी कि अरुणलेखाके परिचित भूतनाथ बाबू रायबहादुर थे और यही कारण था जो वह रायबहादुरनी बनना नापसन्द करती थी!

लावण्यने बहुत कुछ ढाढस बँधाकर कहा—अच्छा, इस विषयमें तू जरा भी चिन्ता न कर, हम सब ठीक कर लेंगी।

लावण्यके पति नीलरतन बक्सरमें काम करते थे। शरदृतुके अन्तमें नवेन्दुबाबूको लावण्यने अपने यहाँ निमंत्रित किया। नवेन्दुबाबू बड़ी खुशीके साथ तत्काल बक्सर चल दिये। यद्यपि रेलपर पैर रखते समय उनकी बाईं आँख नहीं फड़की, परन्तु इससे केवल यही सिद्ध हुआ कि आसन्न विपत्तिके समय बाईं आँखका फड़कना केवल एक बिना सिर-पैरका वहम है।

लावण्यलेखाके शरीरसे नवशीतागमसम्भूत स्वास्थ्य और सौन्दर्य-की लालिमा फूटी पड़ती थी। जिस तरह शरत्-कालमें काँसके खेत फूल-कर लहराते हुए शोभा विस्तार करते हैं, उसी तरह लावण्यलेखाकी सुन्दरता हँसीकी हिलोरोंसे झलमल झलमल करती थी।

नवेन्दुबाबूकी मुग्ध दृष्टिके ऊपर मानो एक पूर्णपुष्पिता मालती-लता नये प्रभातकी शीतल ओसकी बूँदें बरसाने लगी।

मनकी प्रसन्नता और बक्सरके जल-वायुसे नवेन्दुका अजीर्ण रोग दूर हो गया। स्वास्थ्यके नशेसे, सौन्दर्यके मोहसे और सालीकी सेवा शुश्रूषासे वे मानो धरती छोड़कर आकाशसे बातें करने लगे। उनके बगीचेके सामनेसे होकर भरी-पूरी गंगा मानो उन्हींके मनके दुरन्त पाग-

लपनको आकार देकर बड़ी भारी गड़बड़ मचाती हुई प्रबल आवेगके साथ बिना किसी उद्देश्यके बही जाती थी।

बड़े लड़के नदीके किनारे टहलते समय शीत-प्रभातकी स्निग्ध धूप मानो प्रिय-मिलनके उत्तापके समान उनके सारे शरीरको चरितार्थ कर देती। इसके बाद वापस लौट आनेपर सालीके रसोई बनानेके कार्यमें सहायता देनेका भार लेकर नवेन्दुबाबू अपनी अज्ञता और अनिपुणता पद पद पर प्रकाशित किया करते। परन्तु इस मूढ़ अनभिज्ञका इस विषयमें जरा भी आग्रह नहीं देखा गया कि अभ्यास और मनोयोगके द्वारा अपनी त्रुटियोंका संशोधन किया जाय। प्रतिदिन अपनेको दोषी बनाकर वे जो झिड़कियाँ और ताड़नाएँ प्राप्त करते थे, उनसे उनको जरा भी तृप्ति नहीं होती। जितना चाहिए उतना मसाला डालने, चूल्हे-परसे बरतन उतारने चढ़ाने, ज्यादा आँचसे भोजन जल न जाय इसकी सावधानी रखने आदि कामोंमें वे अपनेको जान बूझकर छोटेसे बच्चेके समान अपटु, अक्षम और निरुपाय सिद्ध करते; और इससे अपनी सालीकी कृपामिश्रित हँसी और हँसीमिश्रित झिड़कियोंका सुख भोगते।

दोपहरको, एक ओर भूखकी ताड़ना, दूसरी ओर सालीकी जबर्दस्ती, अपना आग्रह और प्रियजनका औत्सुक्य, रसोईकी विशेषताएँ और रसोई बनानेवालीकी सेवा-मधुरता; इन सबके संयोगसे भोजनका परिमाण ठीक बनाये रखना उनके लिए कठिन हो जाता।

आहारके बाद मामूली ताश खेलनेमें भी नवेन्दुबाबू अपनी प्रतिभाका परिचय नहीं दे सकते। उसमें भी वे चोरी करते, हाथके पत्ते देख लेते, खींचातानी और बकझक करते; तो भी जीत नहीं सकते। न जीतने पर भी जबर्दस्ती अपनी हार अस्वीकार करते और इसके लिए प्रति दिन उनकी बड़ी ही भद्द होती। तो भी वे अपनी भूल सुधारनेकी जरा भी कोशिश न करते।

केवल एक बातमें उन्होंने पूरा पूरा सुधार कर लिया। इस समय वे यह बात प्रायः भूल ही गये कि साहब लोगोंका कृपा-प्रसाद ही जीवनका परम लक्ष्य है और अपने संबंधी जनोंकी श्रद्धा और प्रीति कितने सुख और गौरवकी चीज है, इसका वे सारे अन्तःकरणसे अनुभव करने लगे।

इसके सिवा, वे मानो एक नई परिस्थितिमें जा पड़े। लावण्यके पति नीलरतनबाबू अदालतके सबसे बड़े वकील होनेपर भी कभी साहब लोगोंकी मुलाकातके लिए नहीं जाते थे। जब कभी इस बातकी चर्चा उठती, तब वे कहते—इसकी जरूरत ही क्या है? यदि बदलेमें उचित शिष्टाचार न मिला, तो हम जो कुछ देते हैं, वह तो किसी तरह वापस मिल ही नहीं सकता। मरुभूमिकी रेत स्वच्छ और सफेद होती है; पर क्या केवल इसी कारण उसमें बीज बोनेसे कोई लाभ हो सकता है? यदि फसल वापस मिले तो काली जमीनमें भी बीज बोना अच्छा है।

नवेन्दुबाबू भी खिंचावमें पड़कर इसी दलमें आ मिले। इसका परिणाम क्या होगा, इसकी चिन्ता उन्होंने छोड़ दी। उनके स्वर्गवासी पिताने और स्वयं उन्होंने जो जमीन तैयार पहलेसे कर रक्खी थी, केवल उसीमें 'रायबहादुरी' की उपजकी संभावना बढ़ने लगी; उसमें नई सिंचाई की जरूरत नहीं समझी गई। नवेन्दुबाबूने साहब लोगोंके एक अतिशय प्यारे स्थानमें उनके लिए घुड़दौड़का एक मैदान तैयार करा दिया था।

इसी समय कांग्रेसका समय समीप आ गया। नीलरतन बाबूसे अनुरोध किया गया कि आप चन्दा इकट्ठा करनेका प्रयत्न करनेकी कृपा करें। नवेन्दुबाबू लावण्यके साथ प्रसन्नतापूर्वक ताश खेल रहे थे। इतनेमें नीलरतन चन्देकी फेहरिस्त लिये हुए आ पहुँचे और बोले कि आपको इसपर सही करनी होगी।

पूर्व संस्कारके कारण नवेन्दुका मुख सूख गया। लावण्यने ताना

मारते हुए कहा—ख़बरदार ऐसा काम न करना, नहीं तो तुम्हारा घुड़-दौड़का मैदान मिट्टी हो जायगा !

नवेन्दुने फड़ककर कहा—इसी चिन्ताके कारण आज रातको मुझे नींद नहीं आई !

नीलरतनने आश्वासन देकर कहा—आपका नाम किसी अखबारमें प्रकाशित नहीं होगा।

लावण्यने अतिशय गंभीरताके साथ कहा—तो भी जरूरत ही क्या है ? यदि कहीं किसी तरह...

नवेन्दुने तीव्र स्वरसे कहा—अखबारोंमें नाम प्रकाशित होनेसे क्या मैं डरता हूँ ? यह कहकर नीलरतनके हाथसे फेहरिस्त लेकर उन्होंने चटसे एक दम एक हजार रुपया लिख दिया। पर उन्हें यह विश्वास बना ही रहा कि यह बात अखबारोंमें प्रकाशित न होगी।

लावण्यने मस्तकपर हाथ रखकर कहा—यह आपने क्या किया ?

नवेन्दुने घमण्डके साथ कहा—क्यों, क्या कोई अनुचित काम हो गया ?

लावण्यने कहा—यदि सियालदह स्टेशनका गार्ड, ह्वाइट वे कम्प-नीकी दूकानका असिस्टेण्ट, हार्ट ब्रदर्सका साईस आदि सब तुमसे नाराज होकर कहीं रूठ बैठे, यदि तुम्हारे निमंत्रणमें शराब पीने न आये और यदि मुलाकात होनेपर तुम्हारी पीठ न ठोंकी, तो—

नवेन्दुने उद्धतताके साथ कहा—यदि ऐसा हुआ तो मैं घर जाकर जान दे दूँगा !

कुछ दिनोंके बाद नवेन्दुबाबूने चाय पीते हुए एक अखबारमें एक X नामधारी लेखकका पत्र पढ़ा जिसमें उसने इन्हें अनेक धन्यवाद देकर कांग्रेसके चन्देकी बात प्रकाशित कर दी थी और लिखा

था कि नवेन्दुबाबू जैसे गएय मान्य व्यक्तिकी प्राप्तिसे कांग्रेसकी कितनी बल-वृद्धि हुई है, इसका अन्दाज नहीं किया जा सकता।

कांग्रेसकी बलवृद्धि ? हाय स्वर्गीय तात पूर्णेन्दुशेखर ! क्या तुमने इस हतभागेको कांग्रेसकी बल-वृद्धि करनेके लिए ही भारत-भूमिमें जन्म दिया था ?

किन्तु दुःखके साथ सुख भी है। नवेन्दु जैसे आदमी साधारण आदमी नहीं समझे जा सकते। यह बात छिपाई नहीं जा सकी कि उन्हें अपनी अपनी ओर खींच लानेके लिए, एक ओर भारतवर्षीय अँगरेज लोग और दूसरी ओर कांग्रेसके भक्तजन, बड़ी उत्सुकताके साथ अपनी अपनी बंसी डाले हुए एकटक देख रहे हैं। अतएव नवेन्दुने हँसते हँसते वह अखबार लावण्यको दिखलाया। जैसे वह कुछ जानती ही न हो, इस तरह आश्चर्ययुक्त होकर बोली—अरे बापरे ! इस भले आदमीने तो बिलकुल भंडा-फोड़ कर दिया। हाय हाय ! तुमने इसका क्या बिगाड़ा था ! इसकी कलमको घुन लग जाय, इसकी स्याहीमें धूल पड़ जाय, इसके कागजोंमें दीमक लग जाय—

नवेन्दुने हँसकर कहा—अब आप मेरे शत्रुपर अधिक शापोंकी वर्षा मत कीजिए। मैं अपने शत्रुको क्षमा करके आशीर्वाद देता हूँ कि उसकी कलम-दावात सोनेको हो जाय।

दो दिनके बाद नवेन्दुबाबूके हाथमें अँगरेज़-सम्पादित एक अँगरेज़ी अखबार आ पड़ा जिसमें एक जानकार की सहीसे पूर्वोक्त संवादका प्रतिवाद प्रकाशित हुआ था। लेखकने लिखा था—जो लोग नवेन्दुबाबूको जानते हैं वे इस बातपर कभी विश्वास नहीं करेंगे कि वे इस प्रकारकी बदनामीका काम कर सकते हैं। चीतेके लिए जिस तरह अपने चमड़ेपरकी काली धारियोंका परिवर्त्तन करना संभव है, उसी प्रकार नवेन्दुके लिए भी कांग्रेसमें शामिल होना संभव है।

बाबू नवेन्दुशेखरमें काफी योग्यता और मौलिकता है, वे बेकार उम्मेदवार और मवक्किलशून्य वकील नहीं हैं। वे उस ढंगके आदमी भी नहीं हैं जो कुछ दिनों विलायतकी हवाखोरी करके, और उसके प्रभावसे अपनी वेशभूषा और आचार-व्यवहारमें अद्भुत कपि-वृत्तिको स्थान देकर स्पर्धाके साथ अँगरेज़ समाजमें प्रवेशोद्यत होते हैं और अन्तमें धक्के खाकर हताश हो बैठते हैं। ऐसी दशामें वे ऐसा क्यों करेंगे?...इत्यादि इत्यादि।

हाय परलोकगत पिता पूर्णेन्दुशेखर! तुमने अँगरेजोंके निकट इतना अधिक नाम और विश्वास कमाकर परलोकगमन किया था!

यह चिट्ठी भी मयूरपुच्छके समान फैलाकर सालीके सामने उपस्थित करने योग्य थी। इसमें एक बहुत ही महत्त्वकी बात लिखी थी कि नवेन्दुबाबू कोई अप्रसिद्ध अकिञ्चन अभागे आदमी नहीं हैं, वे एक सारवान् और पदार्थवान् सज्जन हैं!

लावण्यने मानो आसमानसे जमीनपर गिरकर कहा—अबकी बार यह तुम्हारे किस परम मित्रने लिखनेकी कृपा की? किसी टिकट कलेक्टरने? किसी चमड़ेके दलालने या किसी बैंडबाजेके मैनेजरने?

नीलरतनने कहा—आपको उचित है कि इस चिट्ठीका एक प्रतिवाद प्रकाशित कर दें।

नवेन्दुने कहा—जरूरत ही क्या है! क्या मैंने ठेका ले रक्खा है कि जो कुछ मेरे विषयमें लिखा जाय, उस सबका मैं प्रतिवाद करता फिरूँ?

लावण्यने बड़े जोरसे हँसीका एक फुहारा छोड़ दिया।

नवेन्दुने अप्रतिभ होकर कहा—इसमें हँसीकी क्या बात है?

उत्तरमें लावण्य फिर बड़े जोरसे हँसी और हँसते हँसते उसकी पुष्पित-यौवना देहलता जमीनपर लोटने लगी।

इस प्रचुर परिहासकी पिचकारीसे नवेन्दुबाबूके नाक, मुख और नेत्र सब शराबोर हो गये। उन्होंने कुछ क्षुण्ण होकर कहा—क्या आप यह समझ रही हैं कि मैं प्रतिवाद करनेसे डरता हूँ?

लावण्यने कहा—सो क्यों समझूँगी! मैं सोचती हूँ कि तुम अपनी बड़ी बड़ी आशाओं और भरोसेके स्थल उस घुड़दौड़के मैदानको बचाने-की चेष्टा अब भी नहीं छोड़ रहे हो; और यह ठीक भी है—जब तक स्वासा तब तक आशा!

नवेन्दुने कहा—मैं शायद इसी लिए नहीं लिख रहा हूँ! इसके बाद बहुत गरम होकर वे दावात कलम लेकर बैठ गये। परन्तु उन्होंने जो कुछ लिखा उसमें क्रोधकी ललाई फीकी ही रह गई, इस कारण उसके संशोधनका भार लावण्य और नीलरतनको लेना पड़ा। पूरी बनानेकी बारी आनेपर नवेन्दुबाबू जिन पूरियोंको जल और घृतमें ठंडी ठंडी और नरम नरम करके और दबाकर यथासाध्य चपटी करके बेल देते थे, उनको उनके दोनों सहकारी तत्काल ही तलकर कड़ी और गरम करके फुला देते थे। ठीक यही दशा उनके लेखकी भी हुई। उसमें लिखा गया कि आत्मीय जन जब शत्रु हो जाते हैं, तब वे बहिःशत्रुकी अपेक्षा अधिक भयंकर होते हैं। पठान और रूसी लोग भारत-सरकारके वैसे शत्रु नहीं हैं जैसे गर्वोद्धत एंग्लो-इंडियन। सरकार और प्रजाके बीच निरापद मित्रता होने देनेमें ये ही सबसे बड़े अन्तराय हैं। कांग्रेसने राजा और प्रजाके बीच स्थायी सद्भाव-साधनका जो प्रशस्त राज-पथ खोल रक्खा है, एंग्लोइंडियन पेपर उसके बीच काँटे बिखेर रहे हैं। इत्यादि।

नवेन्दु भीतर ही भीतर कुछ भयभीत हुए, परन्तु यह सोचकर कि लेख बहुत अच्छा लिखा गया है, रह रहकर उन्हें कुछ आनन्द भी आने लगा। यह बात उनकी शक्तिसे बाहर थी कि वे ऐसी सुन्दर रचना कर सकते।

इसके बाद कुछ दिनों तक विवाद-विसंवाद, वाद-प्रतिवादसे पत्रोंके कालमके कालम रँगे गये और नवेन्दुके चन्देकी तथा कांग्रेसमें योग देनेकी चर्चा दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गई।

इस समय नवेन्दु बाबूने मानो अपना चोला बदल लिया और वे अपनी सालियोंके बीच अत्यन्त देशहितैषीके रूपमें दर्शन देने लगे। लावण्यने मन ही मन हँसकर कहा—किन्तु, अभी तुम्हारी अग्नि-परीक्षा तो बाकी ही है!

एक दिन सबेरे नवेन्दु स्नान करनेके पहले तेल मल रहे थे। छातीके बाद पीठके दुर्गम स्थानों तक तेल पहुँचानेकी कोशिशमें लगे थे कि इतनेमें नौकरने आकर उनके हाथमें एक विजिटिंग कार्ड लाकर दिया जिसमें स्वयं मजिस्ट्रेट साहबका नाम था। लावण्य आड़में खड़ी हुई सहास्य नेत्रोंसे यह कुतूहलपूर्ण घटना देख रही थी।

तैललिप्त अवस्थामें मजिस्ट्रेटके साथ कैसे मुलाकात की जाय? नवेन्दुबाबू इस तरह छटपटाने लगे जिस तरह तले जानेके पहले मसालेसे भरी मछली छटपटाती है। जल्दी जल्दी बातकी बातमें स्नान करके और किसी तरह कपड़े पहनकर वे दौड़ते हुए बाहरके बैठकखानेमें पहुँचे। बैराने कहा—साहब बहुत समय तक बैठे बैठे चले गये। इस आद्यन्त मिथ्याचरणके पापमें कितना अंश बैराका था और कितना लावण्यका, यह नैतिक गणित-शास्त्रकी एक सूक्ष्म समस्या है।

छिपकलीकी कटी हुई पूँछ जिस तरह अन्धभावसे छटपटाती रहती है, उसी तरह नवेन्दुका क्षुब्ध हृदय भीतर ही भीतर छटपटाने लगा। सारे दिन खाते पीते सोते बैठते उन्हें बेचैनीने चैन नहीं लेने दिया।

लावण्य भीतरी हँसीके सारे आभासको मुँहपरसे बिलकुल दूर करके बड़ी उद्विग्नतासे ठहर-ठहर कर पूछने लगी—भला आज तुम्हें क्या हो गया है! तबीयत तो खराब नहीं है?

नवेन्दुने सूखी हँसी हँसकर किसी तरह एक देशकालपात्रोचित उत्तर निकालकर बाहर किया। कहा—तुम्हारे इलाकेमें तबीयत खराब कैसे हो सकती है! तुम तो मेरी धन्वन्तरिनी हो!

किन्तु तत्काल ही उनकी वह हँसी विलीन हो गई। वे सोचने लगे—एक तो मैंने कांग्रेसके लिए चन्दा दिया, अखबारमें कड़ी चिट्ठी प्रकाशित कराई और उसके ऊपर आज मजिस्ट्रेट साहबके खुद आनेपर भी मैं उनसे मुलाकात न कर सका। मालूम नहीं, वे क्या सोचते होंगे!

हाय पिता! हाय पूर्णेन्दुशेखर! यह सब भाग्यकी ही विचित्रता है कि इस झगड़ेमें पड़कर मैं जो नहीं था, वही बना जा रहा हूँ।

दूसरे दिन सज-धजकर, घड़ी-चैन लटकाकर और मस्तकपर एक बड़ा-सा साफा बाँधकर नवेन्दुबाबू घरसे बाहर हुए। लावण्यने पूछा—कहाँ जाते हैं? नवेन्दुने कहा—एक जरूरी कामसे जा रहा हूँ।

लावण्यने कुछ नहीं कहा।

साहबके द्वारके निकट कार्ड निकालते ही अर्दलीने कहा—इस समय मुलाकात नहीं हो सकती।

नवेन्दुने पाकेटमेंसे दो रुपये निकाले। अर्दलीने संक्षिप्त सलाम करके कहा—हम लोग पाँच आदमी हैं। नवेन्दुने तत्काल ही दस रुपयेका नोट दे दिया।

साहबके यहाँसे तलबी हुई। साहब उस समय स्लीपर और मार्निङ्ग गौन पहने हुए लिख-पढ़ रहे थे। नवेन्दुने जाकर सलाम किया। मजिस्ट्रेटने उँगलीसे बैठनेका इशारा करके कागजकी ओरसे दृष्टि न हटाकर कहा—बाबू, क्या कहना चाहते हो?

नवेन्दुने घड़ीकी चैन हिलाते हिलाते विनीत और कम्पित स्वरसे

कलकत्तेमें पदार्पण करते ही कांग्रेसके लोगोंने नवेन्दुको चारों ओर-से घेरकर एक बड़ा भारी ताण्डव शुरू कर दिया। सम्मान समादर और स्तुति-वादकी सीमा न रही। सभीने कहा कि आप जैसे प्रतिष्ठित पुरुष जबतक देशके काममें योग न देंगे, तब तक देशका उद्धार नहीं हो सकता। इस बातकी यथार्थताको नवेन्दु अस्वीकार नहीं कर सके और इस गोलमालमें वे एकाएक देशके नेता बन बैठे। जब उन्होंने कांग्रेसके सभामण्डपमें प्रवेश किया, तब सब लोगोंने एक साथ उठकर विजातीय विलायती स्वरमें 'हिप् हिप् हुर्रे' शब्दसे उनका उत्कट अभिवादन किया। मातृभूमिके कर्ण-मूल लज्जाके मारे लाल हो गये!

यथासमय महारानीका जन्मदिवस आ पहुँचा। नवेन्दुका 'राय-बहादुर' खिताब निकट-समागत मरीचिकाके समान अन्तर्धान हो गया।

उसी दिन सन्ध्याको लावण्यलेखाने बड़े समारोहके साथ नवेन्दु बाबूको निमंत्रण दिया और उन्हें नवीन वस्त्रोंसे भूषित करके अपने हाथसे रक्तचन्दनका तिलक लगाया। इसके बाद उनकी प्रत्येक साली-ने अपने अपने हाथोंकी गूँथी हुई एक एक पुष्पमाला उनके गलेमें पहना दी। आड़में खड़ी हुई अरुणाम्बरभूषिता अरुणलेखा हास्य, लज्जा और अलंकारोंसे झलमल झलमल कर रही थी। उसके स्वेदाञ्चित और लज्जा-शीतल हाथोंमें एक सुन्दर माला देकर बहनोंने बहुत कुछ खींच-तान की; परन्तु उसने किसी तरह न माना और इस तरह वह प्रधान माला नवेन्दुके कण्ठकी कामना करती हुई चुपचाप जनहीन रात्रिकी प्रतीक्षा करने लगी। सालियोंने कहा—आज हमने तुम्हें राजा बना दिया। भारतवर्षमें ऐसा सम्मान तुम्हें छोड़कर और किसीको नहीं मिला।

इससे नवेन्दुबाबूको सम्पूर्ण सान्त्वना मिली या नहीं, इसे उनका

अन्तःकरण और अन्तर्यामी ही जान सकते हैं। किन्तु हमें इस विषयमें पूरा पूरा सन्देह है। हमारा तो यही विश्वास है और वह बहुत ही पक्का है कि मरनेके पहले वे रायबहादुर अवश्य होंगे और उनकी मृत्यु होनेपर इंग्लिशमेन और पायोनियर एक स्वरसे शोक किये बिना न रहेंगे। अतएव इस बीचमें Three cheers for Babu पूर्णेन्दु-शेखर ! हिप् हिप् हुर्रे ! हिप् हिप् हुर्रे ! हिप् हिप् हुर्रे !

समाप्ति

१

अपूर्वकृष्ण बी० ए० की परीक्षामें उत्तीर्ण होकर कलकत्तेसे अपने घर आ रहे हैं। उनके ग्रामके पासकी नदी यद्यपि बहुत ही छोटी है और इस कारण वर्षाके अन्तमें प्रायः सूख जाया करती है; परन्तु इस समय, श्रावणका महीना है इससे, जलसे परिपूर्ण होकर ग्रामकी सीमा और बाँसोंकी झाड़ीके तलदेशको चूमती हुई बह रही है।

बहुत दिनोंकी लगातार वर्षाके बाद आज आकाश निर्मल हो गया है और धूप निकल आई है।

नावपर बैठे हुए अपूर्वकृष्णका अंतरंग यदि किसी तरह देखा जा सकता तो वहाँ भी हम देखते कि इस युवककी मानस-नदी नव वर्षासे दोनों तटोंको चूमती हुई प्रकाशसे झलमल झलमल और हवासे छल-छल करती हुई बह रही है।

नाव घाटपर आकर लग गई। वहाँसे वृक्षोंकी ओटमेंसे अपूर्वके घरकी पक्की छत दिखलाई देती थी। अपूर्वने अपने आनेका समाचार नहीं दिया था, इस कारण उन्हें लेनेके लिए कोई घाटपर नहीं आया। नावका मल्लाह उनका 'बेग' लेकर चलनेको उद्यत हुआ; परन्तु उन्होंने उसे रोक कर स्वयं ही बेग उठा लिया और वे आनन्दके आवेशमें झटसे नीचे उतर पड़े।

उनका नीचे पैर रखना था कि किनारेकी फिसलनेवाली भूमिके कारण वे बेगसमेत कीचड़में गिर पड़े। वे ज्यों ही गिरे त्यों ही कोई बड़े मीठे स्वरमें खूब ज़ोरसे हँसा जिससे निकटवर्ती बड़पर बैठे हुए पक्षी चौंक उठे।

अपूर्व अत्यन्त लज्जित होकर जल्दीसे उठ बैठे और चारों ओर देखने लगे। देखा कि पास ही ईंटोंका एक ढेर लगा हुआ है और उसीपर बैठी हुई एक लड़की हँसती हँसती लोट पोट हुई जा रही है।

अपूर्वने पहचान लिया कि वह उनकी नई पड़ोसिनकी लड़की मृण्मयी है। कोई दो ही तीन वर्ष हुए हैं कि यह पड़ोसिन इस गाँवमें आकर बसी है। पहले उसका घर यहाँसे बहुत दूर एक बड़ी नदीके किनारे था। नदीकी बाढ़में घर बह जानेके कारण उसे अपना ग्राम छोड़कर यहाँ आना पड़ा है।

गाँवमें इस लड़कीकी इतनी निन्दा की जाती है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। वहाँके पुरुष तो उसे स्नेहपूर्वक 'पगली' कहकर पुकारते हैं, पर स्त्रियाँ उसकी उच्छृङ्खलताके कारण सदा ही भीत, चिन्तित और शंकान्वित रहती हैं। वह केवल लड़कोंके साथ खेलती है, लड़कियोंसे उसे बड़ी ही घृणा है, कभी उनके पास भी नहीं फटकती। शिशु-राज्य उसके उवद्रवोंके मारे मराठा घुड़सवारोंके उपद्रवोंके समान तंग है।

वह अपने बापकी बहुत ही लाड़ली लड़की है, इसी कारण उसका इतना दुर्दान्त प्रताप है। यद्यपि उसकी माता इस विषयमें सर्वदा अपने पतिकी शिकायत ही किया करती है; परन्तु यह सोचकर कि बाप उसे बहुत ही चाहता है और जब कभी वह पास रहता है तब मृण्मयीके आँसू उसे बहुत ही कष्टकर होते हैं, वह अपने प्रवासी पतिका स्मरण करती हुई उसके परोक्षमें भी मृण्मयीको कभी सताती नहीं है।

मृण्मयी देखनेमें काली है। उसके छोटे छोटे घुँघराले बाल पीठ तक बिखरे रहते हैं। उसके मुखका भाव ठीक लड़कोंके सदृश है। उसके बड़े बड़े काले नेत्रोंमें न लज्जा है, न भय है और न हाव-भाव-लीलाका लेश। शरीर दीर्घ, परिपुष्ट, स्वस्थ और सबल है, परन्तु उसे देखकर किसीके मनमें यह प्रश्न नहीं उठता कि उसकी उमर कम है या ज्यादा। यदि उठता तो लोग उसके माता-पिताकी अवश्य निन्दा करते। यदि किसी दिन इस ग्रामके विदेशी जमींदारकी नाव घाटपर आकर लग जाती है तो लोग घबराकर आदरके साथ उठ खड़े होते हैं और स्त्रियोंकी मुख-रंगभूमिके नासाग्रभाग तक यवनिका पड़ जाती है; परन्तु मृण्मयी किसीके नंगे बच्चेको गोदमें लिये हुए न जाने कहाँसे आ जाती है और अदब-कायदेकी जरा भी परवा न करती हुई बिलकुल सामने जाकर खड़ी हो जाती है। इसके बाद वह व्याधाओंसे रहित देशके हरिण-शिशुओंकी तरह निडर होकर बड़े ही कुतूहलसे टकटकी लगाकर देखती और अन्तमें अपने बालक संगियोंके पास जाकर इस नवागत प्राणीके आचार-विचारोंका खूब विस्तारके साथ वर्णन करती है।

हमारे अपूर्व बाबू इससे पहले और भी दो चार बार इस बन्धन-विहीन बालिकाको देख चुके हैं और उसके विषयमें बहुत कुछ विचार भी कर चुके हैं। पृथ्वीमें ऐसे मुख तो अनेक हैं जो आँखोंपर चढ़ जाते हैं; परन्तु कोई कोई ऐसे भी हैं कि बिना कुछ कहे सुने ही आँखोंको

पार करके एकाएक मानस-तटपर आ विराजते हैं। परन्तु ऐसा केवल उनके सौन्दर्यके कारण नहीं बल्कि एक और गुणके कारण होता है; और हमारी समझमें वह गुण शायद सुस्पष्टता है। अधिकांश मुखोंमें मनुष्य-प्रकृति अच्छी तरह स्पष्टताके साथ प्रकाशित नहीं हो पाती; परन्तु जिस मुखमें वह अन्तर्गुहानिवासी रहस्यमय मनुष्य बिना रुकावटके बाहरसे दिखाई पड़ जाता है वह हजारोंके बीचमें भी आँखोंपर चढ़ जाता है और बातकी बातमें मनपर मुद्रित हो जाता है। इस बालिकाके मुखपर और नेत्रोंपर भी एक दुरन्त और अबाध्य नारी-प्रकृति सर्वदा उन्मुक्त और वेगवान् अरण्य-मृगके समान दिखलाई देती है—खेलती है; इसीलिए इसका जानदार चेहरा यदि एक बार देख लिया जाय तो फिर भुलाये नहीं भूलता।

पाठकोंसे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मृण्मयीकी कौतुकमयी हँसी चाहे कितनी ही मीठी क्यों न हो; परन्तु अभागे अपूर्वको वह उतनी अच्छी नहीं लगी। वे अपना बेग मल्लाहके हाथमें देकर बड़ी तेजीके साथ घरकी ओर चल दिये। उस समय उनका मुँह लाल हो रहा था।

तैयारी बहुत ही बढ़िया हुई थी—नदीका किनारा, वृक्षोंकी छाया, सबेरेकी धूप और बीस वर्षकी उम्र। यद्यपि वह ईंटोंका ढेर उतना उल्लेखयोग्य नहीं था; परन्तु जो व्यक्ति उसपर बैठी थी, उसने उस सूखे कठिन आसनको एक मनोहारिणी सुन्दरतासे अवश्य मढ़ दिया। इतने पर भी यह कैसे दुःखकी बात है और भाग्यदेवताकी यह कैसी निष्ठुरता है कि इस सुन्दर दृश्यके भीतर पैर रखते ही सारा कवित्व एक प्रहसनमें परिणत हो गया!

२

आखिर ईंटोंके उस ढेरकी चोटीसे निकली हुई हास्य-गंगाका कलनिनाद सुनते-सुनते अपूर्व बाबू अपने घर पहुँच गये।

पुत्रके एकाएक आजानेसे माता पुलकित हो गई और अड़ोस-पड़ोसमें भी एक प्रकारकी हलचल-सी मच गई ।

भोजनोपरान्त माताने अपूर्वके विवाहकी बात उठाई । अपूर्व बाबू अबकी बार इसके लिए तैयार होकर ही आये थे। उन्हें नये जमानेकी हवा लगी थी, इस कारण वे प्रतिज्ञा कर बैठे थे कि मैं बी० ए० हुए बिना विवाह न करूँगा और इसीलिए अबतक उनका विवाह नहीं हुआ था। उनकी माता भी इसी कारण अबतक चुप थी । उन्होंने सोचा कि अब टालमटोलसे काम नहीं चल सकता और कहा—विवाह तो तब होगा, जब पहले कोई कन्या ठीक कर ली जायगी । माँने उत्तर दिया—कन्या देख ली गई है और बातचीत भी तै हो गई है । तुझे इसकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं । परन्तु अपूर्वने इस चिन्ताको अपने सिरपर ही लेना उचित समझा और कह दिया—कन्याको जब तक मैं स्वयं न देख लूँगा ; तब तक विवाह नहीं होगा । माँने देखा कि लड़का बड़ा ही निर्लज्ज हो गया है और अब घोर कलियुग आ गया है ; परन्तु उसे अन्तमें पुत्रके ही इच्छानुसार चलना पड़ा ।

उस रातको अपूर्व बिछौनेपर लेटे हुए थे। दीपक बुझ गया था । उनकी आँखोंमें नींद नहीं थीं । चारों ओर सन्नाटा था । उनके कानोंमें वही उच्चकण्ठसे निकली हुई मधुर हँसी प्रतिध्वनित होने लगी और उनका मन बार बार यह कह कर कष्ट देने लगा कि सबेरेकी वह पैर फिसल जानेकी गलती किसी न किसी तरह सुधार लेनी चाहिए । उस लड़कीको यह नहीं मालूम कि मैं बी० ए० तक पढ़ा हूँ और कलकत्तेमें बहुत समय तक रहकर आया हूँ, अतएव यदि दैवात् पैर फिसल जानेसे गिर भी पड़ा, तो केवल इतनेसे ही उपहास्य या उपेक्षणीय कैसे हो गया ! क्या मैं कोई देहाती गँवार हूँ ?

दूसरे दिन अपूर्व बाबू कन्या-निरीक्षणके लिए जानेको तैयार हो

गये। बहुत दूर नहीं, उनके ही महल्लेमें उसका घर था। उन्होंने धोती दुपट्टेको अलग रखकर रेशमी चपकन पहनी, पैण्ट कसा, बढ़िया फेल्ट कैप लगाई, बार्निश किया हुआ नया बूट पहना और इमीटेशन सिल्कका सुन्दर छाता हाथमें लिया। इस तरह बड़े ठाटबाटके साथ वे घरसे बाहर निकले।

भावी ससुरालमें पैर रखते ही आदर-सत्कारकी धूम मच गई। थोड़ी ही देरके बाद कम्पितहृदया कन्या झाड़-पोंछकर, रँग-रँगाकर, माँगमें सिन्दूर भरकर और एक पतले रंगीन कपड़ेमें लपेटकर वरके सामने उपस्थित की गई। वह अपने मस्तकको घुटनोंके बीचमें डाले हुए एक ओर चुपचाप बैठ गई और एक प्रौढ़ा दासी साहस दिलानेके लिए उसके पीछे खड़ी हो गई। कन्याका छोटा भाई अपने परिवारमें अनधिकार-प्रवेशोद्यत इस युवककी टोपी, घड़ीकी चैन और उगती हुई मूँछोंको टकटकी लगाकर देखने लगा। अपूर्व बाबूने कुछ समय तक मूँछोंको ऐंठते ऐंठते बड़ी ही गम्भीरतासे प्रश्न किया कि तुम क्या पढ़ती हो? परन्तु वसनाभूषणोंसे ढके हुए उस लज्जा-स्तूपने कोई उत्तर न दिया। आखिर दो तीन बार प्रश्न किये जाने और दासीके द्वारा बार-बार उत्साहजनक कर-ताड़न पानेपर उसने बहुत ही धीरे एक ही साँसमें बड़ी तेजीके साथ कह डाला—बालबोध द्वितीय भाग, व्याकरणसार, हिन्दुस्तानका भूगोल, पाटीगणित और भारतवर्षका इतिहास। इसी समय बाहरसे किसीके आनेकी आहट मिली और तत्काल ही दौड़ती हाँफती और पीठ परके बालोंको हिलाती हुई मृण्मयी आ पहुँची। उसने अपूर्वकृष्णकी ओर देखा तक नहीं और कन्याके छोटे भाई राखालका हाथ पकड़कर खींचातानी शुरू कर दी। उस समय राखाल पर्यवेक्षणके काममें तन्मय था, इसलिए वह किसी तरह वहाँसे जानेको राजी न हुआ। दासी इस बातका खयाल रखते हुए कि मेरे

संयत कण्ठ-स्वरकी कोमलता कम न हो जाय, यथासाध्य तीव्रताके साथ मृण्मयीको डाँटने डपटने लगी। अपूर्व बाबू अपनी सारी गंभीरता और गुरुताको एकत्र करके चुपचाप पेटके पास लटकती हुई घड़ीकी चैन हिलाने लगे। मृण्मयीने देखा कि राखाल टससे मस नहीं होता, तब वह उसकी पीठपर तड़ाकसे एक धौल जमाकर और कन्याका घूँघट खोलकर आँधीके समान तेजीके साथ बाहर हो गई। इसपर दासी क्रुद्ध होकर गरजने लगी और राखाल बहनका घूँघट खुल जानेके कारण खिलखिलाकर हँसने लगा। उसकी पीठपर जो जोरकी धौल पड़ी थी, उसे उसने बेजा नहीं समझा; क्योंकि वह एक मामूली घटना थी। इस प्रकारका लेन-देन उन दोनोंके बीच बराबर चला ही करता था। पहले मृण्मयीके बाल इतने बड़े हो गये थे कि पीठके बीचोंबीच तक आ जाते थे। एक दिन राखालने चुपचाप पीछेकी ओरसे पहुँचकर उनपर कैंची चला दी। इसपर मृण्मयीको बड़ा क्रोध आया। उसने राखालके हाथसे कैंची छीन ली और अपने शेष बालोंको भी स्वयं ही बड़ी निर्दयताके साथ काट डाला। उसके काले घुंघराले बालोंके गुच्छे डालसे गिरे हुए काले अंगूरोंकी तरह पृथ्वीपर बिखर गये। उन दोनोंके बीच इसी प्रकारकी शासनप्रणाली प्रचलित थी।

पूर्वोक्त घटनाके उपरान्त वह नीरव परीक्षा-सभा अधिक समय तक न टिक सकी। पिण्डाकार कन्या किसी तरह फिरसे दीर्घाकार होकर दासीके साथ अन्दर चली गई। अपूर्व बाबू भी बड़ी ही गंभीरताके साथ अपनी विरल और सूक्ष्म मूँछोंपर ताव देते हुए उठ खड़े हुए। द्वारके निकट पहुँचकर उन्होंने देखा कि वार्निश किये हुए नये जूते गायब हैं। बहुत कुछ ढूँढ़ खोज करने पर भी उनका पता न लगा।

इस पर घरके सभी आदमी चिढ़ उठे और अपराधीके नामपर लगातार निन्दा और गालियोंकी वर्षा करने लगे। जब जूतोंके पानेकी

कोई आशा न रही, तब अपूर्व बाबू गृहस्वामीकी फटी-पुरानी और ढीली ढाली चटी पहनकर अपनी सजावट निरखते हुए अत्यन्त सावधानीके साथ उस कीचड़-भरे रास्तेसे अपने घरकी ओर चले।

वे ज्यों ही तालाबके किनारेके निर्जन मार्गपर पहुँचे, त्यों ही उन्हें फिर वही जोरकी हँसी सुनाई दी। उस समय ऐसा मालूम हुआ कि कौतुकप्रिया वनलक्ष्मी ही तरु-पल्लवोंकी ओटमेंसे अपूर्वबाबूकी यह बे-मेल चटी देखकर हँस रही है।

अपूर्वबाबू लज्जितसे होकर ठिठक रहे और इधर उधर देखने लगे। इतनेमें ही वह निर्लज्ज अपराधिनी सघन वनमेंसे निकल आई और खोये हुए जूते उनके सामने रखकर भागने लगी। अब अपूर्वसे न रहा गया, उन्होंने बड़ी फुर्तीके साथ आगे बढ़कर उसे कैद कर लिया।

मृण्मयीने टेढ़ी मेढ़ी होकर और भरसक जोर लगाकर हाथ छुड़ाने और भागनेकी चेष्टा की; परन्तु वह सब व्यर्थ हुई। उसके घुँघराले बालोंसे ढँके, भरे और हँसते हुए चेहरेपर डालियोंके बीचमेंसे छनकर आती हुई सूर्य-किरणें आ पड़ीं। जिस तरह कौतुकी पथिक धूपसे चमकती हुई, निर्मल और चञ्चल नदीकी तलीको उसकी ओर झुककर देखता है, ठीक उसी तरह अपूर्वने मृण्मयीके ऊपर उठे हुए मुखपर झुककर उसकी बिजलीके समान चंचल आँखोंके भीतर गहरी नजर गड़ाकर देखा और तब बहुत ही धीरे धीरे मुट्ठी ढीली करके उसे छोड़ दिया। यदि अपूर्वने पकड़कर मार दिया होता, तो उससे मृण्मयीको कुछ भी आश्चर्य न होता—वह एक मामूली बात होती। परन्तु वह इस गुपचुप दण्डका तो कुछ अर्थ ही न समझ सकी जो उसे उस सुनसान रास्ते पर इतनी खूबसूरतीके

साथ दिया गया। इसके बाद ही सारे आकाशको व्याप्त करती हुई फिर वही चंचल हास्यध्वनि सुनाई पड़ी। ऐसा जान पड़ा कि मानो नृत्यमयी प्रकृति देवीके बिछुओंकी झनकार गूँज रही है। चिन्ता-निमग्न अपूर्वकृष्ण बहुत धीरे धीरे पैर बढ़ाते हुए वहाँसे चल दिये और अपने घर आ पहुँचे।

३

उस दिन अपूर्वबाबू अपनी मातासे बिलकुल नहीं मिले। तरह तरहके बहाने बनाकर उन्होंने वह सारा दिन यों ही व्यतीत कर दिया। भोजनके समय मिलना पड़ता, सो उस दिन कहीं निमंत्रण था। समझमें नहीं आता कि अपूर्वके समान पढ़ा लिखा और गंभीर आदमी एक मामूली बिना पढ़ी लिखी लड़कीसे अपना लुप्त गौरव उद्धार करने और उसे अपनी महत्ताका परिचय देनेके लिए इतना अधिक उत्कण्ठित क्यों हो रहा है। यदि एक देहाती लड़कीने उसे मामूली आदमी समझ ही लिया तो क्या हुआ और यदि उसने थोड़ी देरके लिए उसकी परवा न करके निर्बोध राखालके साथ खेलनेके लिए धूम मचा दी, तो इसमें भी उसका क्या बिगड़ गया! यदि वह 'विश्वदीप' में समालोचना लिखा करता है तो लिखा करे, और उसके ट्रङ्कमेंसे एसेन्स, जूते, कपूर, चिट्ठी लिखनेके रंगीन कागज और हार्मोनियमशिक्षा आदि चीजें रात्रिके गर्भमेंसे भावी उषाकी तरह बाहर निकालनेकी प्रतीक्षा किया करती हैं, तो किया करें। मृण्मयीके सामने इन बातोंका सुबूत पेश करनेकी तो कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। परन्तु एक तो मनको समझाना कठिन काम है, और दूसरे श्रीयुत अपूर्वकृष्णराय बी० ए० इसके लिए किसी तरह तैयार नहीं हैं कि वे एक देहाती लड़कीके सामने हार मानकर चुप बैठ जायँ!

जब संध्याके समय अपूर्व बाबू घरके भीतर गये, तब माँने पूछा—क्यों रे अपू, लड़की देख आया ? कैसी है ? पसन्द आई ?

अपूर्वने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—हाँ, देख आया माँ, और उनमेंसे एक लड़कीको पसन्द भी कर आया।

माँने आश्चर्यके साथ पूछा—लड़की तो एक ही थी, बहुत-सी कहाँसे आ गईं ?

अन्तमें बहुत कुछ इधर उधर करनेके बाद मालूम हुआ कि अपूर्वने पड़ोसिन की लड़की मृण्मयीको पसन्द किया है। हाय ! हाय ! इतना पढ़ना लिखना सीखनेपर भी लड़केकी यह पसन्द !

पहले अपूर्व बहुत कुछ लज्जालु थे; परन्तु जब माताने उनकी पसन्दगी का प्रबल विरोध किया, तब वह लज्जाका प्रबल बाँध टूट गया और वे जिदमें आकर यहाँ तक कह बैठे कि यदि मैं विवाह करूँगा तो मृण्मयीके ही साथ, अन्यथा करूँगा ही नहीं। ज्यों ज्यों वे अन्य मिट्टी की पुतलियों जैसी कन्याओंकी कल्पना करने लगे, त्यों त्यों विवाहसे उनकी अरुचि बढ़ने लगी।

दो तीन दिन दोनों ओरसे मान अभिमान, आहार और अनिद्राकी चोटें चलनेके बाद अन्तमें जीत अपूर्वकी ही हुई। माँने अपने मनको समझाया कि एक तो मृण्मयी अभी निरी बच्ची है और दूसरे उसकी माँमें इतनी योग्यता नहीं है कि वह अपनी लड़कीको अच्छी शिक्षा दे सके। यदि वह मेरे पास रहेगी तो मैं उसका स्वभाव अवश्य सुधार लूँगी। धीरे धीरे उन्हें यह सोचकर भी प्रसन्नता होने लगी कि उसका मुख सुन्दर है; परन्तु तत्काल ही उन्हें यह खयाल आ गया कि उसके सिरके बाल बहुत ही छोटे हैं। इससे उन्हें बड़ी ही निराशा हुई; परन्तु उन्होंने इस आशासे फिर अपने मनको समझा लिया कि यदि मैं उसका

सिर अच्छी तरहसे गूँथ दिया करूँगी और नित्य बढ़िया तेल लगाऊँगी तो धीरे धीरे यह दोष भी दूर हो जायगा।

अपूर्वकी इस पसन्दका नामकरण भी हो गया। पास-पड़ौसके लोग इसे 'अपूर्व पसन्द' कहने लगे। उस गाँवमें यद्यपि ऐसे लोगोंकी कमी नहीं थी जो मृण्मयीको प्यार करते थे, परन्तु ऐसा एक भी नहीं दिखलाई दिया जो उसके साथ अपने लड़केका विवाह कर देना पसन्द करता हो।

यथासमय मृण्मयीके पिता ईशान मजूमदारको इस बातकी खबर दे दी गई। वह नदीके किनारेके एक छोटेसे स्टेशनपर एक स्टीमर-कंपनीका क्लार्क था और माल लादने-उतारने और टिकट बेचनेका काम करता था।

मृण्मयीके विवाहकी खबर पाकर उसके दोनों नेत्रोंसे टपटप आँसू गिरने लगे। परन्तु यह कहना कठिन है कि उनके भीतर कितना दुःख था और कितना आनन्द।

ईशानने कम्पनीके बड़े साहबके यहाँ कन्याके विवाहके लिए छुट्टीकी दरखास्त दी, परन्तु साहबने इसे एक बहुत ही मामूली कारण समझकर छुट्टी नामंजूर कर दी! तब ईशानने अपने घर चिट्ठी लिखी कि मुझे दशहरेके मौकेपर एक सप्ताहकी छुट्टी मिलेगी, इस लिए विवाहकी मिती तब तकके लिए टाल देनी चाहिए; परन्तु अपूर्वकी माताने कह दिया कि इस महीनेका मूहूर्त्त बहुत ही अच्छा है, इस कारण अब मिती नहीं हटाई जा सकती।

जब ईशानकी उक्त दोनों ही दरख्वास्तें नामंजूर हो गईं, तब वह चुप हो गया और व्यथितहृदय होकर पहलेके ही समान मालकी तौलाई और टिकट-बिक्री करने लगा।

अब मृण्मयीकी माता तथा अड़ोस-पड़ोसकी सब बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंने उसे उसके भावी कर्तव्यके सम्बन्धमें लगातार उपदेश देनेका सिलसिला बाँध दिया। खेलना, कूदना, जल्दी जल्दी चलना, जोर जोरसे हँसना, लड़कोंके साथ मिलना जुलना और भूख लगते ही भोजन करने बैठ जाना, आदि सभी बातें न करनेकी सलाह देकर उन्होंने बड़ी सफलताके साथ यह सिद्ध कर दिया विवाह होना कोई ऐसी वैसी बात नहीं है—वह बड़ी ही भयंकर चीज है। इससे मृण्मयीको भी विश्वास हो गया कि मानो मुझे यह हुक्म सुना दिया गया है कि तुझे जीवन-भर जेलमें रहना पड़ेगा और अन्तमें फाँसी दे दी जायगी।

आखिर उस दुष्टने अड़ियल टट्टूके समान गर्दन टेढ़ी करके और पीछे हटकर कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूँगी।

४

तो भी उसे विवाह करना पड़ा।

इसके बाद शिक्षाका आरंभ हुआ। एक ही रातमें मृण्मयीकी सारी स्वतंत्र पृथ्वी अपूर्वकी माँके घरके अन्दर कैद हो गई।

सासने संशोधन-कार्य जारी कर दिया। उसने बड़ी ही कठोरतासे कहा—देखो बेटी, अब तुम छोटी बच्ची नहीं हो। हमारे घरमें अब तुम्हारा यह बेहयापन न चलेगा।

पर सासने यह बात जिस भावसे कही, बहूने उसे उस भावसे ग्रहण नहीं किया। उसने सोचा, यदि इस घरमें न चलेगा, तो शायद कहीं दूसरी जगह चले जाना पड़ेगा। आखिर दोपहरको वह लापता हो गई। ढूँढ़ खोज होने लगी कि वह कहाँ गई। अन्तमें विश्वासघातक राखालने किसी गुप्त स्थानसे उसको पकड़वा दिया। वह एक बड़के तले राधाकान्त ठाकुरके टूटे हुए रथमें छिपकर बैठी थी।

इसपर सास, माता और अड़ोस-पड़ोसकी सभी हितैषिणियोंने उसका खूब ही तिरस्कार किया ।

रातको बादल घिर आये और रिमझिम रिमझिम वर्षा होने लगी । अपूर्वकृष्ण धीरे धीरे अपने बिछौनेपरसे मृण्मयीके पास खिसककर बहुत ही कोमल स्वरमें बोले—मृण्मयी, क्या तुम मुझे प्यार नहीं करतीं ?

मृण्मयीने तेजीके साथ उत्तर दिया—ना, मैं तुम्हें कभी प्यार न करूँगी । उसका सारा क्रोध एकत्र होकर अपूर्वके मस्तकपर वज्रके समान आ गिरा ।

अपूर्वने उसकी चोटसे दुःखी होकर कहा—क्यों, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? मृण्मयीने कहा—तुमने मेरे साथ ब्याह क्यों किया ?

इस अपराधकी कोई संतोषजनक कैफियत नहीं दी जा सकी । फिर भी अपूर्वने मन ही मन निश्चय कर लिया कि मैं इस दुर्बाध्य मनको, जैसे बनेगा वैसे, वशीभूत करके ही छोड़ूँगा ।

दूसरे दिन सासने बहूको एक कोठरीमें बन्द कर दिया; क्योंकि उसने समझ लिया था कि अब यह कुछ न कुछ उपद्रव अवश्य करेगी । पहले तो वह पिंजड़ेमें बन्द किये गये नये पक्षीकी तरह फड़फड़ाती हुई इधर उधर फिरने लगी, उसके बाद जब कहींसे निकल भागनेका कोई रास्ता न मिला, तब उसने बिछौनेकी चादर दाँतोंसे चीथकर टुकड़े टुकड़े कर डाली और इसके बाद वह जमीनपर औंधी पड़कर मन-ही-मन पिताको पुकारती हुई रोने और सिसकने लगी ।

इस समय कोई धीरे धीरे पास आया और बड़े प्रेमसे धूलमें लोटते हुए उसके बालोंको कपोलों परसे एक ओर हटा देनेकी चेष्टा करने

लगा। इस पर मृण्मयीने मस्तक हिलाकर बड़े जोरसे उसका हाथ झटकेसे अलग कर दिया। तब अपूर्वने अपना मुँह उसके कानोंके पास ले जाकर बहुत ही कोमल स्वरसे कहा—मैं चुपचाप दरवाजा खोले देता हूँ। चलो, हम लोग यहाँसे भाग चलें। मृण्मयीने तेजीसे सिर हिलाकर रोते रोते कहा—ना। तब अपूर्वने उसकी ठोढ़ी पकड़कर मुँह ऊपर उठानेकी चेष्टा करते हुए कहा—एक बार देखो तो सही, कौन आया है! इस समय राखालकी अक्ल चकरा रही थी। वह पृथ्वीपर पड़ी हुई मृण्मयीकी ओर देखता हुआ द्वारके समीप ही खड़ा था। मृण्मयीने मुख न उठाकर अपूर्वका हाथ झटक दिया। फिर भी अपूर्वने प्रेमपूर्वक कहा—देखो, राखाल तुम्हारे साथ खेलनेके लिए आया है। तुम उसके साथ खेलने नहीं जाओगी? उसने गुस्सेसे भरे हुए स्वरमें कहा—ना। राखालने भी देखा कि आज मेरी दाल न गलेगी, इस लिए वह किसी तरह जान बचाकर भाग गया। परन्तु अपूर्व चुपचाप वहीं बैठे रहे। जब मृण्मयी रोते रोते थककर सो गई, तब वे धीरेसे उठे और बाहरकी साँकल चढ़ाकर चल दिये।

इसके दूसरे दिन ईशान मजूमदारका पत्र आया। उसमें उन्होंने पहले अपनी प्राणप्यारी बेटी मृण्मयीके विवाहमें उपस्थित न हो सकनेके कारण दुःख प्रकट किया था और अन्तमें अपनी बेटी और दामादके कल्याणके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करके आन्तरिक आशीर्वाद दिया था।

पिताका पत्र पढ़कर मृण्मयी अपनी सासके पास गई और बोली—मैं अपने पिताके पास जाऊँगी, मुझे भेज दो। सास यह असंभव प्रार्थना सुनकर जल उठी और झिड़ककर बोली—बापका कुछ ठीक ठिकाना भी हो कि कहाँ रहता है! कहती है कि बापके पास जाऊँगी। इसका यह ढँग तो देखो! बहू इसका कुछ भी उत्तर न देकर चली गई और अपने

कमरेमें जाकर भीतरसे द्वार बन्द करके बिलकुल निराश आदमी जिस तरह ईश्वरसे प्रार्थना करता है, उस तरह कहने लगी—बाबूजी, मुझे ले जाओ, यहाँ मेरा कोई नहीं है, मैं यहाँ नहीं बचूँगी।

जब रात बहुत बीत गई और अपूर्वकृष्ण सो गये, तब मृण्मयी धीरेसे द्वार खोलकर घरसे बाहर हो गई। यद्यपि बादल घिर घिर आते थे, फिर भी चाँदनी रात थी, इस कारण मार्ग सूझ पड़ने योग्य काफ़ी उजेला था। मृण्मयीको यह ज्ञात नहीं था कि पिताके यहाँ जानेके लिए किस रास्तेसे जाना चाहिए। उसे यह विश्वास हो रहा था कि डाकका हरक़ारा जिस रास्तेसे जाता है, उस रास्तेसे चाहे जहाँ जाया जा सकता है, इसलिए उसने वही रास्ता पकड़ लिया। चलते चलते शरीर थक गया और रात भी प्रायः समाप्त हो गई। वनके भीतर जब दो चार पक्षियोंने पंख फड़फड़ाकर अनिश्चित सुरसे बोलना आरंभ किया और समयका अच्छी तरह निर्णय न कर सकनेके कारण वे चुप हो गये, तब वह उस रास्तेके छोर पर जा पहुँची जिसके आगे एक नदी बह रही थी; और जहाँ वह खड़ी थी, वहाँ बाजारकी-सी लंबी चौड़ी जगह थी। वह सोचने लगी कि अब आगे किस ओरको जाना चाहिए। इतनेमें ही उसे अनेक बारका सुना हुआ 'झमझम' शब्द सुनाई पड़ा और थोड़ी ही देरमें कंधेपर चिट्ठियोंका थैला लटकाये हुए डाकका हरकारा आ पहुँचा। वह बड़ी तेजीके साथ आ रहा था। मृण्मयी जल्दीसे उसके पास गई और कातर होकर बोली—मैं अपने बाबूजीके पास कुशीगंज जाती हूँ, तुम मुझे अपने साथ ले चलो। वह बोला—कुशीगंज कहाँ है, यह मैं नहीं जानता और फुर्तीसे घाटपर चला गया। वहाँ डाँककी नाव बँधी हुई थी। उसने जल्दीसे मल्लाहको जगाकर नाव खुलवा दी। उसे न दया करने का समय था और न कुछ पूछताछ करनेका।

देखते देखते सोये हुए घाट और बाजार जाग उठे। मृण्मयीने घाट-पर जाकर माँझीसे कहा—तुम मुझे कुशीगंज ले चलोगे? माँझीके उत्तर देनेके पहले ही पासकी नाव परसे एक आदमी बोल उठा—अरे कौन मिनू! बेटी, तू यहाँ कैसे? मृण्मयीने बड़ी व्यग्रतासे कहा—बनमाली, मैं अपने बाबूजीके यहाँ जाऊँगी, कुशीगंज। तू मुझे अपनी नाव-पर ले चल। बनमाली मृण्मयीके गाँवका ही माँझी था। वह इस उच्छृंखल बालिकाको अच्छी तरह जानता था। उसने कहा—बाबूजीके यहाँ जायगी? यह तो बहुत अच्छी बात है! चल, मैं पहुँचा दूँगा। मृण्मयी नावपर चढ़ गई।

नाव छोड़ दी गई। बादल घिर आये और मूसलधार वर्षा होने लगी। भादोंकी चढ़ी हुई नदी नावको थपेड़े दे देकर हिलाने डुलाने लगी। मृण्मयीकी आँखें झपने लगीं। वह आँचल बिछाकर लेट गई और नदीके हिंडोलेमें प्रकृतिके स्नेहपालित शान्त शिशुके समान तत्काल ही सो गई।

बहुत देरके बाद जब आँख खुली, तब उसने देखा कि मैं अपनी ससुरालमें एक खाटपर पड़ी हुई हूँ। घरकी मजदूरनीने बहूको जागते हुए देखकर बड़बड़ाना शुरू कर दिया और उसीके सुरमें सुर मिलाकर सास भी तरह तरहकी खरी खोटी बातें कहने लगी। अन्तमें जब उन दोनोंने उसके पिताको बुरा भला कहना शुरू किया, तब वह जल्दीसे उठकर पासहीके कमरेमें, भीतरसे अर्गल लगाकर जा पड़ी।

अपूर्वने लज्जाको ताकपर रखकर मातासे कहा—माँ, बहूको दो चार दिनके लिए उसके पिताके घर भेज देनेमें क्या हानि है?

इसपर माताने अपूर्वकी खूब ही खबर ली। उसे इस अपराधमें

भी फटकार खानी पड़ी कि हजारों अच्छीसे अच्छी लड़कियोंके होते हुए भी उसने इस जी जलानेवाली चुड़ैलको पसन्द करके अपनी खराबी की।

५

उस दिन प्रायः दिन-भर घरके बाहर और अन्दर दोनों ही जगह घोर जल-वर्षा और अश्रु-वर्षा होती रही।

दूसरे दिन जब कोई एक पहर रात बीत गई, तब अपूर्वने मृण्मयीको जगाकर कहा—तुम अपने बाबूजीके पास जाओगी?

मृण्मयीने जल्दीसे अपूर्वका हाथ पकड़ लिया और चौंककर कहा—हाँ, जाऊँगी।

अपूर्वने कहा—तो चलो, हम दोनों चुपचाप भाग चलें। मैं एक नाव ठीक कर आया हूँ।

मृण्मयीने पहले बहुत ही कृतज्ञताके साथ पतिके मुँहकी ओर देखा और फिर जल्दीसे उठकर कहा—चलो। अपूर्वने एक पत्र लिखकर रख दिया, जिससे माँको विशेष चिन्ता न हो और तब दोनों घरसे बाहर हो गये।

मृण्मयीके लिए पहला ही अवसर था कि जब उसने उस अँधेरी रातमें एक निस्तब्ध निर्जन मार्गपर स्वेच्छापूर्वक आन्तरिक विश्वासके साथ अपने पतिका हाथ पकड़ा। उसके हृदयके आनन्दकी लहरें उस सुकोमल स्पर्शके योगसे अपूर्वकृष्णकी रग-रगमें तेजीके साथ पहुँचने लगीं।

नाव उसी रातको चल दी। हर्षकी अतिशय प्रबलता होनेपर भी मृण्मयीको बहुत जल्दी नींद आ गई। दूसरे दिन उसे जिस स्वाधीनता और सुखका अनुभव हुआ उसका वर्णन नहीं हो सकता। नदीके दोनों

ओर न जाने कितने ग्राम, बाजार, खेत और वन पर्वत आदि और इधर उधर न जाने कितनी नावें आती जाती दिखाई पड़ीं। मृण्मयी जरा जरा-सी बातपर अपने पतिसे हजारों प्रश्न करने लगी। उस नाव-पर कौन हैं, वे लोग कहाँसे आये हैं, कहाँ जायँगे, इस जगहको क्या कहते हैं, इत्यादि। इन सब प्रश्नोंका उत्तर देना सहज न था; क्योंकि अपूर्वने उन्हें न तो अपने किसी पाठ्य-ग्रन्थमें पढ़ा था और न उनकी कलकत्तेकी अभिज्ञता ही उनका समाधान कर सकती थी। अपूर्वके मित्रोंको सुनकर लज्जा होगी कि उन्होंने उक्त सभी प्रश्नोंके जो उत्तर दिये, उनमेंसे अधिकांश उत्तर सत्यतासे बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। उन्हें तिलोंसे भरी हुई नावको अलसीकी नाव, कंगाल गाँवको रायनगर और मुन्सिफकी अदालतको जमींदारकी कचहरी बतलानेमें जरा भी संकोच न हुआ। परन्तु उनके ऐसे उत्तरोंसे विश्वासवती प्रश्नकारिणीके सन्तोषमें तिलभर भी बाधा न पड़ी।

दूसरे दिन शामको यह नाव कुशीगंज पहुँच गई। ईशानबाबू टीनके एक छप्परके नीचे, स्टूलपर बैठे हुए हिसाब लिख रहे थे। उनके सामने एक छोटा-सा टेबुल था और उसपर एक मैली कुचैली लाल-टेनमें मिट्टीका तेल जल रहा था। धोतीके सिवा उनके शरीरपर और कोई वस्त्र न था। इसी समय इस नवदम्पतिने ईशानबाबूके आफिस-में प्रवेश किया। मृण्मयीने कहा—बाबूजी! इसके पहले उस स्थानपर ऐसी कण्ठध्वनि कभी नहीं सुनी गई थी।

ईशानकी आँखोंसे टपाटप आँसू गिरने लगे। उस समय वे निश्चय न कर सके कि मुझे क्या करना चाहिए। साम्राज्यके युवराजके समान दामाद और युवराज्ञीके समान बेटीके लिए, वहाँ पड़े हुए पाटके गट्ठोंके बीचमें सोनेका सिंहासन कैसे बनाया जाय, इसका उत्तर उनकी कुण्ठित बुद्धि न दे सकी।

इसके बाद ही आहारकी चिन्ताने आ घेरा। दरिद्र क्लर्क अपने हाथसे दाल भात पकाकर खा लिया करता था। आज इस आनन्दके अवसरपर वह क्या करे और क्या खिलावे! मृण्मयी बोली—आज हम सब लोग मिलकर रसोई बनावेंगे। अपूर्वको भी यह प्रस्ताव अच्छा जान पड़ा और उन्होंने इस कामके लिए बहुत अधिक उत्साह प्रकट किया।

उस घरके भीतर स्थानाभाव था, लोकाभाव था और अन्नाभाव भी था; परन्तु जिस तरह फुहारा छोटेसे छिद्रमेंसे चौगुने वेगके साथ छूटता है, उसी तरह दरिद्रताके संकीर्ण मुखमेंसे आनन्दकी धारा पूरी तेजीके साथ उच्छ्वसित होने लगी।

इसी तरह तीन दिन बीत गये। दोनों वक्त नियमित रूपसे स्टीमर आता और तब सैकड़ों यात्रियोंके कोलाहलसे वह स्थान भर जाता; परन्तु सन्ध्याको नदीका किनारा बिल्कुल निर्जन हो जाता और उस समय वहाँ अबाध स्वाधीनताके दर्शन होते। तब तीनों आदमी मिलकर रसोईकी तरह तरहकी तैयारियाँ करते, भूलें करते और कुछ करते हुए कुछ कर बैठते। इसके बाद मृण्मयी अपने वलय-झंकृत स्नेहसिक्त हाथोंसे परोसती, ससुर दामाद एक साथ आहार करते और दोनों मिलकर मृण्मयीकी सैकड़ों त्रुटियोंकी आलोचना करते हुए प्रसन्न होते। इससे मृण्मयी खीझती, अभिमान करती और इस प्रकार आनन्द-कलहका वह दृश्य समाप्त हो जाता। आखिर अपूर्वने कहा—अब यहाँ और अधिक ठहरना ठीक नहीं। मृण्मयीने करुणस्वरसे और कुछ दिन रहनेकी प्रार्थना की। अपूर्वने कहा—नहीं, कोई काम नहीं है।

बिदाईके दिन ईशानचन्द्रने कन्याको छातीसे लगाकर और उसके मस्तकपर हाथ रखकर अश्रु-गद्गद कण्ठसे कहा—बेटी, तुम ससुरालको

उज्ज्वल करके लक्ष्मी बनकर रहना। कोई मेरी बेटीमें कुछ दोष न निकाल सके।

मृण्मयी रोते रोते अपने पतिके साथ बिदा हो गई और ईशान उसी द्विगुण निरानन्द संकीर्ण घरमें लौटकर दिनके बाद दिन और मास-के बाद मास बिताने और नियमित रूपसे माल तौलने लगे।

६

जब दोनों अपराधी घर लौटकर आये, तब माता अत्यन्त गंभीर होकर रह गईं, बोली तक नहीं। किसीको कोई दोष भी नहीं लगाया, जिसको दूर करेनेकी वे चेष्टा करें। यह नीरव अभियोग और निस्तब्ध अभिमान सारी गृहस्थीके ऊपर लोहेके बोझके समान अटल भावसे लद गया।

जब यह बोझ असह्य हो गया, तब अपूर्वने आकर कहा—माँ, कालेज खुल गये हैं। अब मुझे कानून पढ़नेके लिए जाना होगा।

माँने उदासीनताके साथ कहा—बहूका क्या करोगे?

अपूर्वने कहा—उसे यहीं रहने दो।

माँने कहा—नहीं बेटा, ऐसा मत करो। तुम उसे अपने साथ ही ले जाओ। माताने आज ही अपूर्वको 'तुम' कहा था; नहीं तो पहले बराबर वह 'तू' कहा करती थी।

अपूर्वने अभिमानसे टूटे हुए स्वरमें कहा—अच्छी बात है।

कलकत्ते जानेकी तैयारी होने लगी। जानेके दिनसे पहलेवाली रात-को अपूर्वने अपनी शय्यापर आकर देखा कि मृण्मयी रो रही है।

एकाएक अपूर्वके हृदयपर चोट लगी। उन्होंने विषाद-युक्त कण्ठसे पूछा—मृण्मयी, क्या तुम मेरे साथ कलकत्ते नहीं चलना चाहतीं?

मृण्मयीने कहा – नहीं ।

अपूर्वने पूछा—तुम मुझे प्यार नहीं करतीं ? पर इस प्रश्नका उन्हें कोई उत्तर न मिला । यों तो इस प्रश्नका उत्तर बहुत ही सहज है; परन्तु कभी कभी इसके अन्दर मनस्तत्त्व-घटित इतनी अधिक जटिलता भरी रहती है कि एक बालिकाके द्वारा उसके उत्तरकी आशा नहीं की जा सकती ।

अपूर्वने पूछा—शायद तुम राखालका साथ नहीं छोड़ सकतीं ! तुम्हारा जी न जाने कैसा होता है ! क्यों ?

मृण्मयीने अनायास ही उत्तर दे दिया—हाँ ।

इस बी० ए० परीक्षोत्तीर्ण कृतविद्य युवकके हृदयमें उस अपढ़ बालक राखालके प्रति सुईके समान अति सूक्ष्म पर साथ ही अति सुदीर्घ, ईर्ष्याका उदय हुआ । उसने कहा—परन्तु मैं बहुत समय तक घर नहीं आ सकूँगा । इस संवादके सम्बन्धमें मृण्मयीको कुछ भी नहीं कहना था । थोड़ी देर बाद अपूर्वने फिर कहा—जान पड़ता है, दो वर्ष तक नहीं आ सकूँगा, बल्कि इससे ज्यादा ही समय लग जायगा । इसपर मृण्मयीने आज्ञा दी कि जब तुम वापस आना तब राखालके लिए तीन फलवाला एक राजस चाकू लेते आना ।

अपूर्व लेटे हुए थे; उन्होंने किञ्चित् उठकर कहा—तो फिर तुम यहीं रहोगी ?

मृण्मयीने कहा—हाँ, मैं अपनी माँके पास जाकर रहूँगी ।

अपूर्वने साँस लेकर कहा—अच्छा वहीं रहना ! परन्तु जब तक तुम मुझे आनेके लिए चिट्ठी नहीं लिखोगी, तब तक मैं नहीं आऊँगा । क्यों, इससे तो तुम्हें ख़ूब ख़ुशी हुई होगी ?

मृण्मयी इस प्रश्नका उत्तर देनेकी जरूरत न समझकर सोने लगी। परन्तु अपूर्वको नींद नहीं आई। वे तकियेके सहारे बैठ रहे।

रात बहुत बीत गई। एकाएक बिछौनेपर चन्द्रमाका प्रकाश आ पड़ा। अपूर्वने उसी प्रकाशमें मृण्मयीकी ओर दृष्टि डाली। देखते देखते उन्हें खयाल आया कि यह कहानीमेंकी राजकन्या है। इसे कोई रूपेकी छड़ी छुआकर अचेत कर गया है। यदि कहींसे सोनेकी छड़ी मिल जाय तो यह निद्रित आत्मा जगा दी जाय और इससे माला बदल ली जाय। रूपेकी छड़ी हँसी और सोनेकी छड़ी आँसू हैं।

भोर होनेपर अपूर्वने मृण्मयीको जगा दिया और कहा—मेरे जाने-का समय हो गया। चलो, तुम्हें तुम्हारी माताके यहाँ पहुँचा आऊँ।

मृण्मयी शय्या छोड़कर उठ खड़ी हुई। अपूर्वने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा—इस समय तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। मैंने कई बार तुम्हारी सहायता की है। आज जानेके समय उसके बदलेमें मुझे कुछ पुरस्कार दोगी?

मृण्मयीने विस्मित होकर पूछा—क्या?

अपूर्वने कहा—तुम अपनी इच्छासे प्रेमपूर्वक मुझे एक चुम्बन दे दो।

अपूर्वकी यह अद्भुत प्रार्थना और गंभीर मुख देखकर मृण्मयी हँस पड़ी। बड़ी मुश्किलसे हँसी रोककर उसने मुख आगे बढ़ाकर चुम्बन देनेका प्रयत्न किया; परन्तु पास पहुँचने पर उससे नहीं बन पड़ा और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। इस तरह दो बार चेष्टा करके और अन्तमें निरस्त होकर वह मुँहपर कपड़ा रखकर हँसने लगी। अपूर्वने शासनके छलसे उसका कान मल दिया।

अपूर्वकी प्रतिज्ञा बहुत कड़ी है। डकैती करके छीन झपट लेनेको वे अपनी आत्माका अपमान समझते हैं। वे देवताके समान गौरवयुक्त

रहकर स्वेच्छापूर्वक दिया हुआ उपहार पसन्द करते हैं। चाहे कुछ हो, अपने हाथसे उठाकर नहीं लेना चाहते। जो संयोग अत्यधिक हृदय-रसकी लालसासे होता है, उसके सिवाय और कोई चीज़ उन्हें नहीं रुचती।

मृण्मयी और अधिक नहीं हँसी। अपूर्व उसे प्रत्यूषके अल्प प्रकाशमें निर्जनपथसे उसकी माँके घर पहुँचा आये और अपनी माँसे बोले —मैंने सोचकर देखा कि यदि मैं उसे साथ ले जाऊँगा, तो मेरे पढ़ने लिखनेमें हर्ज होगा और वहाँ उसके पास रहनेवाला भी कोई नहीं है। तुम तो उसे इस घरमें रखना ही नहीं चाहतीं, इस कारण मैं उसे उसकी माँके यहाँ पहुँचा आया हूँ।

सुगंभीर अभिमानके बीच माता और पुत्रका विच्छेद हो गया।

७

माताके घर आकर मृण्मयीने देखा कि किसी काममें उसका मन नहीं लगता। इस घरका मानो सभी कुछ आदिसे अन्त तक बदल गया है। वह यह निश्चित न कर सकी कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किसके साथ मिलूँ जुलूँ।

उसे ऐसा मालूम होने लगा कि सारे घर और गाँवमें कोई आदमी ही नहीं है। मानो दोपहरके समय सूर्यको ग्रहण लग गया है। वह किसी तरह न समझ सकी कि आज कलकत्ते जानेके लिए जो इतनी इच्छा हो रही है, वह कल रातको कहाँ चली गई थी! कल वह नहीं जानती थी कि जीवनके जिस अंशका परिहार करनेके लिए मन इतना छटपटा रहा था, आज ही उसका सारा स्वाद क्योंकर इतना बदल गया। वृक्षके पके हुए पत्तोंके समान आज उसने उसी अतीत जीवनको इच्छापूर्वक अनायास तोड़कर दूर फेंक दिया।

कहा जाता है कि चतुर कारीगर ऐसी सूक्ष्म तलवार बना सकता है कि उसके द्वारा किसी मनुष्य के दो टुकड़े कर देने पर भी वह नहीं जान सकता कि मेरे दो टुकड़े हो गये हैं और अन्तमें उसके हिलने डुलने पर वे दोनों खण्ड अलग अलग हो जाते हैं। विधाताकी तलवार भी ऐसी ही सूक्ष्म है। उसने मृण्मयीके बाल्य और यौवनके बीचमें आघात किया। परन्तु वह जान नहीं सकी और आज जरा-सी ठेस लगने पर उसका बाल्य अंश यौवनसे जुदा हो गया और मृण्मयी विस्मित और व्यथित होकर देखती रह गई।

माताके घरका उसके सोनेका कमरा उसे अपना नहीं मालूम हुआ। वहाँ जो रहता था, वह एकाएक नहीं रहा। अब हृदयकी सारी स्मृति उस एक नये घर, नये कमरे, और नई शय्याके आसपास गुन गुन करती हुई घूमने लगी।

मृण्मयीको अब कोई बाहर नहीं देख पाता। उसका खिलखिलाकर हँसना भी अब किसीको नहीं सुन पड़ता। राखाल अब उसे देखकर डरता है। खेलने कूदनेकी बात अब उसके मनमें भी नहीं आती।

मृण्मयीने माँसे कहा—माँ, मुझे ससुराल पहुँचा दे।

इधर बिदाके समयका पुत्रका विषादयुक्त मुख स्मरण करके अपूर्वकी माताका हृदय विदीर्ण होने लगा। उसके मनमें यह बात काँटेके समान चुभने लगी कि वह क्रुद्ध होकर बहूको समधिनके घर रख गया है।

ऐसी अवस्थामें एक दिन मृण्मयी सिर ढककर मलीन मुख किये हुए सासके पास आई और उसने उसके पैरोंके पास झुककर प्रणाम किया। सासने तत्काल ही उसे छातीसे लगा लिया। उसकी आँखें डबडबा आई। बातकी बातमें दोनोंका मिलन हो गया। सास अपनी बहूके मुँहकी ओर देखकर विस्मित हो रही। उसने देखा कि यह तो मृण्मयी

नहीं है। साधारणतः ऐसा परिवर्त्तन सर्वत्र नहीं देखा जाता। बड़े भारी परिवर्तनके लिए बल भी बहुत बड़ा चाहिए।

सासने निश्चय किया था कि मृण्मयीके सारे दोष एक एक करके सुधारूँगी; परन्तु उसके सुधारनेके पहले ही न जाने किस संशोधनकर्त्ता-ने न जाने किस संक्षिप्त उपायका अवलम्बन करके मृण्मयीको मानो एक नया ही जन्म ग्रहण करा दिया।

इस समय सासको मृण्मयीने समझा और मृण्मयीने सासको पहचाना। जिस तरह वृक्षके साथ उसकी सारी शाखा-प्रशाखाओंका मेल रहता है, उसी प्रकार सारी गृहस्थी आपसमें अखण्डरूपसे सम्मिलित हो गई।

एक गंभीर स्निग्ध और विशाल रमणी-प्रकृति मृण्मयीके सारे शरीर और सारे अंतःकरणकी रग रगमें भर उठी, और इससे मानो उसे एक तरहकी वेदना होने लगी। प्रथम आषाढ़के श्याम सजल मेघोंके समान उसके हृदयमें एक अश्रुजलपूर्ण विस्तीर्ण अभिमानका संचार होने लगा। उस अभिमानने नेत्रोंकी छायामय सुदीर्घ पलकोंके ऊपर एक और गहरी छाया डाल दी। वह मन ही मन कहने लगी कि मैं तो मूर्ख थी, इस कारण मैं अपने आपको नहीं जान सकी; परन्तु तुमने मुझे क्यों नहीं पहचाना? तुमने मुझे दण्ड क्यों न दिया? तुमने मुझे अपने इच्छानुसार क्यों नहीं चलाया? जब यह राक्षसी तुम्हारे साथ कलकत्ते जानेको राजी नहीं हुई, तब तुम इसे जबर्दस्ती पकड़कर क्यों नहीं ले गये? तुमने मेरी बात क्यों सुनी, मेरा अनुरोध क्यों माना, मेरे बेकहेपनको क्यों सहन किया?

इसके बाद, वह दृश्य उसकी आँखोंके सामने घूम गया जब अपूर्वने तालाबके किनारे निर्जन मार्गमें उसे गिरफ्तार कर लिया था और बिना कुछ कहे सुने केवल उसके मुँहकी ओर टकटकी लगा दी थी। एका-

एक उसे वही तालाब, वही रास्ता, वही तरुतल, वही प्रभातकी धूप और वही हृदयके बोझेसे ढकी हुई गंभीर दृष्टि याद आ गई और उसका सारा अभिप्राय उसकी समझमें आ गया। इसके बाद, उस बिदाईके दिनका वह असम्पूर्ण चुम्बन—जो अपूर्वके मुँहकी ओर अग्रसर होकर लौट आया था—इस समय मरुमरीचिकाभिमुख प्यासे पक्षीकी तरह उसी बीते हुए अवसरकी ओर दौड़ने लगा, किसी तरह उसकी प्यास नहीं मिटी। अब रह रहकर केवल यही मनमें आने लगा कि हाय यदि अमुक समयपर मैं ऐसा करती, अमुक प्रश्नका यदि यह उत्तर देती, उस समय यदि ऐसा होता, आदि।

अपूर्वके मनमें इस कारण क्षोभ हुआ था कि मृण्मयीने मुझे अच्छी तरह नहीं पहचाना। मृण्मयी भी आज बैठी बैठी सोचती है कि उन्हों-ने मुझे क्या समझा और क्या समझकर वे चले गये। अपूर्वने उसे दुरन्त चपल, अविवेकिनी और निर्बोध बालिका समझा, परिपूर्ण हृदया-मृतधारासे प्रेमकी प्यास बुझानेमें समर्थ रमणी नहीं जाना। इसीसे वह परिताप, लज्जा और धिक्कारसे पीड़ित होने लगी। चुम्बन और सुहागके उन ऋणोंको वह अपूर्वके सिरहानेके तकियोंके ऊपर चुकाने लगी। इस तरह कितने ही दिन बीत गये।

अपूर्व कह गये थे कि जब तक तुम चिट्ठी नहीं लिखोगी, मैं घर नहीं आऊँगा। इसी बातको स्मरण करके मृण्मयी एक दिन घरके कि-वाड़ लगाकर चिट्ठी लिखने बैठी। अपूर्व उसे जो सुनहली कोरके रंगीन कागज दे गये थे, उन्हींको निकालकर वह सोचने लगी कि क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ। कागज और कलमको खूब जोरसे पकड़कर, टेढ़ी लाइनें खींचकर, उँगलियोंमें स्याही पोतकर, अक्षरोंको छोटा बड़ा बनाकर, ऊपर कोई भी सम्बोधन न लिखकर उसने लिखा, "तुम मुझे चिट्ठी क्यों नहीं लिखते? तुम्हारी तबीयत कैसी है? और तुम घर आओ।" इसके

आगे और क्या लिखा जाय सो कुछ नहीं सोच सकी। यद्यपि मतलब-की बातें सभी लिखी जा चुकी थीं; परन्तु मनुष्य-समाजमें मनका भाव कुछ और विस्तारके साथ प्रकाश करनेकी आवश्यकता होती है। यह बात मृण्मयीकी समझमें भी आ गई, इस लिए उसने और भी कुछ समय तक सोच साचकर कितनी ही नई बातें और जोड़ दीं—"अबकी बार तुम मुझे चिट्ठी लिखो, और कैसे हो सो भी लिखो, और घर आओ। माँ अच्छी हैं। विशू अच्छी है। कल हमारी काली गैयाको बछड़ा हुआ है।" इतना लिखकर चिट्ठी समाप्त कर दी। चिट्ठीको मोड़कर लिफाफेमें रक्खा और प्रत्येक अक्षरके ऊपर हार्दिक प्यारका एक एक बिन्दु डालकर लिखा—"श्रीयुक्त बाबू अपूर्वकृष्ण राय।" प्यार चाहे जितना दिया हो, तो भी लाइनें सीधी, अक्षर साफ और हिज्जे शुद्ध नहीं हुईं।

मृण्मयीको यह मालूम न था कि लिफाफेके ऊपर नामके सिवा और भी कुछ लिखा जाता है। कहीं सास या और किसीकी नजर न पड़ जाय, इस लज्जासे उसने एक विश्वस्त दासीके हाथ चिट्ठी डाकमें डलवा दी।

कहनेकी जरूरत नहीं कि इस पत्रका कोई फल नहीं हुआ, अपूर्व-कृष्ण घर नहीं आये।

८

छुट्टियाँ हो गईं, फिर भी अपूर्व घर नहीं आये। इससे माताने समझा कि वह अभी तक मुझसे नाराज है।

मृण्मयीने भी यही निश्चय किया कि वे मुझपर नाराज हैं। तब अपनी चिट्ठीका स्मरण करके वह लाजसे गड़ी जाने लगी। वह चिट्ठी कितनी छोटी थी, उसमें कुछ भी नहीं लिखा गया, उसमें मेरे मनका

भाव कुछ भी प्रकाशित न हो सका, उसे पढ़कर वे मुझे और भी मूर्ख समझ रहे होंगे, इन सब बातोंको सोचकर मृण्मयी शर-विद्धकी नाईं भीतर ही भीतर छटपटाने लगी। उसने दासीसे बार बार पूछा—उस चिट्ठीको क्या तू डाकमें डाल आई थी? दासीने उसको हजार बार विश्वास दिलाकर कहा—बहूजी, मैं खुद अपने हाथसे बक्समें डाल आई थी। बाबूजीको तो वह कभीकी मिल गई होगी।

आखिर अपूर्वकी माताने एक दिन मृण्मयीको पुकार कर कहा—बेटी, अपूर्व बहुत दिनोंसे घर नहीं आया है, इससे सोचती हूँ कि कलकत्ते जाकर उसे देख आऊँ। तुम साथ चलोगी? मृण्मयीने सम्मति-सूचक गर्दन हिला दी और अपने कमरेमें जाकर उसने भीतरसे साँकल लगा ली। इसके बाद उसने बिछौनेपर पड़कर, तकियेको छातीके ऊपर दबाकर, हँसकर और हिल-डुलकर मनके आवेगको उन्मुक्त कर दिया। इसके बाद वह क्रमसे गंभीर होकर, विषण्ण होकर, आशंकासे परिपूर्ण होकर, बैठकर रोने लगी।

अपूर्वको बिना कोई खबर दिये ही ये दोनों अनुतप्ता स्त्रियाँ उसकी प्रसन्नताकी भिक्षा पानेके लिए कलकत्ते चल दीं। अपूर्वकी माता वहाँ अपने दामादके घर जाकर ठहरी।

उस दिन मृण्मयीके पत्रकी आशासे निराश होकर अपूर्व अपनी प्रतिज्ञा भंग करके स्वयं ही उसे पत्र लिखनेके लिए बैठे थे। परन्तु उन्हें कोई बात रुचिके अनुकूल न मिलती थी। वे एक ऐसा सम्बोधन ढूँढ़ते थे, जिससे प्रेम भी प्रकट हो और अभिमान भी व्यक्त हो जाय। परन्तु ऐसा सम्बोधन न मिलनेसे मातृभाषाके ऊपर उनकी अश्रद्धा बढ़ रही थी। इसी समय उन्हें बहनोईका पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि आपकी माता आई हैं, शीघ्र आइए और रातको यहींपर भोजनादि कीजिए। और सब कुशल है। अन्तिम कुशल-वाक्यके रहते हुए भी

अपूर्व किसी अमंगलकी आशंकासे चिन्तित हो गये। बिना विलम्ब किये वे बहनके घर जा पहुँचे।

मातासे मिलते ही उन्होंने पूछा—माँ, सब कुशल तो है ? माँने कहा—बेटा, सब कुशल है। तू छुट्टीमें घर नहीं गया, इस कारण मैं तुझे लेने आई हूँ।

अपूर्वने कहा—इसके लिए इतना कष्ट उठाकर आनेकी क्या आवश्यकता थी ? कानूनकी परीक्षा थी, पढ़ना बहुत पड़ता है, इत्यादि इत्यादि।

भोजनके समय बहनने पूछा—भैया, अबकी बार तुम भाभीको साथ क्यों नहीं ले आये ?

भैया गंभीर भावसे कहने लगे—कानूनकी परीक्षा थी, पढ़ना बहुत पड़ता है, इत्यादि इत्यादि।

बहनोईने कहा—इस दलीलमें कुछ दम नहीं है। वास्तवमें हम लोगोंके भयसे लानेका साहस नहीं हुआ !

बहनने कहा—तुम्हारे भयंकर होने में क्या सन्देह है ! कच्ची उमरके आदमी तुम्हें देखकर यों ही चौंक उठते हैं !

इस तरह हास्य-परिहास होने लगा ; परन्तु अपूर्व बहुत ही चिन्तित हो रहे थे। उन्हें कोई बात अच्छी ही नहीं लगती थी। वे सोचते थे कि जब माँ कलकत्ते आईं, तब यदि मृण्मयी चाहती तो उनके साथ अनायास ही आ सकती। जान पड़ता है, माँने उसे लानेकी चेष्टा भी की होगी ; परन्तु वह राजी नहीं हुई। इस विषयमें संकोचके कारण वे माँसे कोई प्रश्न भी न कर सके—उन्हें शुरूसे अखीर तक सारा मानव-जीवन और सारी विश्व-रचना भ्रान्ति-संकुल जान पड़ने लगी।

भोजन समाप्त हो चुकने पर बड़ी तेज हवा चली और मूसलधार पानी बरसने लगा।

बहनने कहा—भैया, आज यहीं रह जाओ।

भैयाने कहा—नहीं, घर जाऊँगा ; काम है।

बहनोईने कहा—रातको तुम्हें ऐसा कौन-सा काम करना है। यदि यहाँ एक रात ठहर जाओगे तो ऐसा वहाँ कौन है जिसके आगे तुम्हें कैफियत देनी पड़ेगी! तुम्हें चिन्ता ही किस बातकी है?

बहुत कुछ दबाव पड़ने पर, इच्छा न रहने पर भी, अपूर्व बाबू रातको वहीं रहनेके लिए राजी हो गये।

बहनने कहा—भैया, तुम बहुत थके हुए दिखाई देते हो। इसलिए अब देर मत करो, सोनेके लिए चलो।

अपूर्व भी यही चाहते थे। उन्हें उत्तर प्रत्युत्तर देना अच्छा नहीं लग रहा था। वे सोचते थे कि अन्धकारमें शय्यातलपर अकेले जा पड़नेसे सारी झंझटोंसे छुट्टी मिल जायगी।

सोनेके कमरेके द्वारपर आकर देखा कि भीतर अन्धकार हो रहा है। बहनने कहा—हवासे चिराग बुझ गया है। क्या दूसरा चिराग जला लाऊँ?

अपूर्वने कहा—नहीं जरूरत नहीं है। मैं रातको चिराग बुझाकर ही सोता हूँ।

बहनके चले जानेपर अपूर्व अन्धकारमें सावधानीके साथ पलंगकी ओर बढ़े।

उन्होंने पलंगपर चढ़नेके लिए पैर बढ़ाया ही था कि इतनेमें जेवरकी झनकार सुन पड़ी और एक अतिशय कोमल बाहुपाशने उन्हें

सुकठिन बन्धनमें बाँध लिया, तथा एक पुष्पपुटतुल्य ओष्ठाधरने डाकूके समान आक्रमण करके लगातार आँसुओंसे भीगे हुए आवेगपूर्ण चुम्बनोंसे उन्हें विस्मय प्रकाशित करनेका भी अवसर न दिया। अपूर्व पहले तो चौंक उठे, उसके बाद वे समझ गये कि हास्य-बाधाके कारण असम्पन्न रही हुई बहुत दिनोंकी एक चेष्टा आज अश्रु-जलधारामें समाप्त हो गई।

जासूस

मैं खुफिया पुलिसमें काम करता हूँ। मेरे जीवनके केवल दो ही लक्ष्य हैं—एक मेरी स्त्री और दूसरा मेरा व्यवसाय। पहले मैं एकान्नवर्त्ती परिवार या सम्मिलित कुटुम्बमें था। पर वहाँ मेरी स्त्रीकी कोई पूछताछ नहीं थी, इसलिए मैं अपने बड़े भाईके साथ लड़ झगड़कर अलग हो गया। भाई साहब ही कमाई करके हम लोगोंका पालन करते थे; इसलिए उनका सहारा छोड़कर जुदा हो जाना मेरे लिए एक तरहका दुःसाहस ही था। किन्तु मुझे अपने आप पर बहुत बड़ा भरोसा था। मैं अच्छी तरह जानता था कि जिस तरह सुन्दरी स्त्री मेरी वशवर्त्तिनी है, उसी तरह भाग्यलक्ष्मीको भी मैं अनायास ही वश कर लूँगा। इस संसारमें मैं किसीसे पीछे नहीं रहूँगा।

पुलिसके महकमेमें मैं एक मामूली सिपाहीकी हैसियतसे प्रविष्ट

हुआ था; परन्तु थोड़े ही समयमें अपनी कारगुजारीसे मैं डिटेक्टिव पुलिसका इन्स्पेक्टर बन गया।

जिस तरह उज्ज्वल दीप-शिखामेंसे काला काजल निकलता है, उसी तरह मेरी स्त्रीके प्रेममेंसे भी ईर्ष्या और सन्देहकी कालिमा निकलती रहती और यह मेरे काममें बाधक बनती; क्योंकि पुलिसके काममें स्थानास्थानका, कालाकालका विचार नहीं किया जा सकता। बल्कि उसमें तो स्थानकी अपेक्षा अस्थान और कालकी अपेक्षा अकालकी ओर ही अधिक ध्यान देना पड़ता है; और इससे मेरी स्त्रीका स्वभाव-सिद्ध सन्देह और भी दुर्निवार हो जाता। जब वह मुझे भय दिखानेके लिए कहती—तुम जब चाहे तब, जहाँ चाहे तहाँ, रह जाते हो; मेरे पास बहुत ही कम आते हो। क्या इससे तुम्हें मेरे विषयमें सन्देह नहीं होता? तब मैं उससे कहता—सन्देह करना मेरा व्यवसाय है; इसलिए मैं उसे अपने घरमें लानेकी जरूरत नहीं समझता।

स्त्री कहती—सन्देह करना मेरा व्यवसाय नहीं; मेरा स्वभाव है। मुझे तुम सन्देहका जरा-सा भी मौका दो, तो मैं सब कुछ कर सकती हूँ!

मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जासूस विभागमें मैं सबका शिरोभूषण बनूँगा और दुनियाँमें अपना नाम अमर कर जाऊँगा। जासूसोंके सम्बन्धमें जितनी रिपोर्टें और उपन्यास आदि मिल सकते थे, मैंने उन सबको पढ़ डाला। परन्तु उनसे मेरे मनका असन्तोष और अधैर्य और भी बढ़ गया। इसका एक कारण था।

हमारे देशके अपराधी डरपोक और निर्बोध होते हैं और यहाँ अपराध भी निर्जीव एवं सरल होते हैं। उनमें न दुरूहता होती है और न दुर्गमता। हमारे देशके हत्यारे हत्या करनेकी उत्कट उत्तेजनाको संवरण

करके अपने अन्दर किसी तरह नहीं रख सकते। मकड़ी जो जाल बुनती है, उसमें जल्दीसे स्वयं ही सिरसे पैर तक उलझ जाती है। अपराध-व्यूहसे बाहर निकलनेका कूट कौशल वे नहीं जानते। अतः ऐसे निर्जीव देशमें जासूसीके काममें न तो कोई सुख है और न कोई गौरव।

बड़े बाजारके मारवाड़ी जुआ-चोरोंको अनायस ही गिरफ़्तार करके मैं मन ही मन कहा करता—अरे अपराधीकुलकलङ्को, दूसरोंका सर्व-नाश कर डालना हर किसीका काम नहीं है। इसे चालाक उस्ताद ही कर सकते हैं। तुम जैसे अनाड़ी निर्बोधोंको तो साधु तपस्वी होकर जन्म लेना था! इसी तरह और अनेक हत्यारोंको पकड़कर उनके प्रति भी मैं कहा करता—गवर्नमेण्टका फाँसीका ऊँचा तख्ता क्या तुम जैसे गौरवहीन प्राणियोंके लिए निर्मित हुआ है? तुम लोगोंमें न तो किसी प्रकारकी उदार कल्पनाशक्ति है और न कठोर आत्म-संयम। तब समझमें नहीं आता कि तुम लोग किस बिरते पर हत्यारे बननेका साहस करते हो!

जब कभी मैं अपनी कल्पनाकी आँखोंसे लन्दन और पेरिसके जनाकीर्ण मार्गोंके दोनों ओरके कुहरेसे ढके हुए गगनचुम्बी महलोंको देखता, तब मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो आता। उस समय मैं मन-ही-मन सोचता कि इन महलोंकी श्रेणियों और पथ-उपपथों के बीचसे जिस तरह रात दिन जनस्रोत, कर्मस्रोत, उत्सवस्रोत और सौन्दर्यस्रोत बहते हैं, उसी तरह वहाँ सर्वत्र ही एक हिंस्रकुटिल कृष्णकुञ्चित भयंकर अपराध-प्रवाह भी अपना मार्ग बनाकर बहता है; और उसीकी समीपतासे यूरोपीय सामाजिकताकी हँसी-मसखरी और शिष्टाचारने ऐसी विराट् भीषण रमणीयता प्राप्त की है। परन्तु इधर हमारे कलकत्तेके पथ-पार्श्वके खुली हुई खिड़कियोंवाले मकानोंमें राँधना-पकाना, गृह-कार्य, सबक याद करना, ताश खेलना, दाम्पत्य-कलह, और बहुत हुआ तो भ्रातृ-

विच्छेद और मुकद्दमोंके सलाह मशविरे छोड़कर और कुछ नजर ही नहीं आता। यहाँके किसी मकानकी ओर देखकर यह खयाल तो कभी आता ही नहीं है कि शायद इस समय भी इस मकानके किसी कोनेमें शैतान छिपा हुआ बैठा है और अपने काले काले अंडे से रहा है!

मैं बहुधा रास्तों पर निकलकर पथिकोंके मुखकी चेष्टाएँ और चलनेके ढंग बहुत ही बारीकीके साथ देखा करता। उस समय भाव-भङ्गीसे जिन लोगोंपर जरा-सा भी सन्देह हुआ है, उनका पीछा किया है; उनके नाम धाम और इतिहासका पता लगाया है और अन्तमें बड़ी ही निराशाके साथ यह आविष्कार किया है कि वे निष्कलङ्क भले आदमी हैं। यहाँ तक कि उनके नाते-रिश्तेके लोग भी उनके विषयमें किसी प्रकारका गुरुतर अपवाद प्रकाशित नहीं करते। पथिकोंमें जो सबसे अधिक पाखण्डी मालूम हुआ है, यहाँ तक कि जिसे देखकर यह अच्छी तरह निश्चित-सा हो गया है कि यह अभी अभी कोई बड़ा भारी दुष्कार्य करके आया है, उसके विषयमें भी अनुसन्धान करनेसे यही पता चला है कि वह एक मामूली स्कूलका ऑसिस्टेण्ट मास्टर है और लड़कोंको छुट्टी देकर घर जा रहा है। यदि ये सब लोग अन्य किसी देशमें उत्पन्न हुए होते, तो इसमें सन्देह नहीं कि विख्यात चोर या डाकू बन सकते। परन्तु यथोचित जीवनी शक्ति और यथेष्ट पौरुषके अभावसे ये बेचारे इस अभागे देशमें केवल मास्टरी करके और बुढ़ापेमें पेन्शन लेकर ही मर जाते हैं। बहुत बड़ी चेष्टा और अनुसन्धानके उपरान्त उस मास्टरकी निरीहताके प्रति मुझे जैसी गहरी अश्रद्धा उत्पन्न हुई, वैसी किसी अतिशय क्षुद्र कटोरे लोटेके चुरानेवालेपर भी कभी नहीं हुई!

अन्तमें एक दिन सन्ध्याके समय मैंने अपने मकानके निकटवर्ती गैसपोस्टके नीचे एक ऐसा आदमी देखा जो बिना जरूरत उत्सुकताके

साथ एक ही जगह घूम फिर रहा था। उसे देखकर मुझे जरा भी सन्देह न रहा कि यह किसी गुप्त षड्यन्त्रकी तैयारी कर रहा है। मैंने अन्धेरेमें छिपकर अच्छी तरह उसका चेहरा देख लिया। वह जवान था और देखनेमें सुन्दर भी। मैंने मन-ही-मन कहा—दुष्कर्म करनेके लिए ऐसा ही चेहरा तो उपयोगी होता है। जिन लोगोंका चेहरा स्वयं उनके ही विरुद्ध गवाही दिया करता है, उन्हें तो मानो हर तरह सब प्रकारके अपराधोंसे बचकर ही चलना पड़ता है। वे सत्कार्योंमें तो सफल होंगे ही कैसे, दुष्कर्मोंमें सफलता प्राप्त करना भी उनके लिए कठिन होता है। देखा कि इस छोकरेका चेहरा ही उसका सबसे बड़ा हथियार है। इसके लिए मैंने उसकी मन ही मन ख़ूब प्रशंसा की और कहा—भैया, तुम्हारे लिए भगवानने जो दुर्लभ सुभीता कर दिया है, उससे तुम्हें पूरा पूरा फायदा उठाना चाहिए; वास्तविक प्रशंसाके पात्र तुम तभी होगे।

मैं अन्धकारमेंसे निकलकर उसके सामने आ गया और उसकी पीठ पर हाथ रखकर बोला—कहो, अच्छे तो हो? वह एकाएक चौंक उठा और उसका चेहरा फीका पड़ गया। मैंने कहा—माफ कीजिए, भूल हो गई, मैंने आपको भूलसे कुछ और समझा था! पर मन ही मन कहा—भूल जरा भी नहीं हुई है, तुम्हें जो समझा था, तुम वही निकले हो! किन्तु इस तरह बहुत अधिक चौंक उठना उसके लिए ठीक नहीं हुआ। अपने शरीरपर उसका और भी अधिक काबू होना चाहिए था, किन्तु श्रेष्ठताका सम्पूर्ण आदर्श अपराधी-श्रेणीमें भी विरल होता है।

ओटमें आकर देखा कि वह त्रस्त होकर वहाँसे चल दिया है। मैंने भी उसका पीछा किया। देखा कि वह गोलदिग्घीके भीतर जाकर पुष्क-रिणीके किनारे तृणशय्यापर चित लेट गया है। विचार किया कि उपाय सोचनेके लिए सचमुच ही यह उपयुक्त स्थान है। गैसपोस्टके नीचेकी जगहसे तो यह कहीं अच्छा है। यहाँ यदि लोग कुछ सन्देह करेंगे भी,

तो अधिकसे अधिक यही करेंगे कि यह युवक नील आकाशमें अपनी प्रियतमाका मुखचन्द्र अंकित करके काली रातकी कमी पूरी कर रहा है। इस तरह इस युवकके प्रति मेरा चित्त उत्तरोत्तर आकर्षित होने लगा।

मैंने उसके निवासस्थानका पता लगा लिया। यह भी जान लिया कि उसका नाम मन्मथ है और वह किसी कालेजमें पढ़ता है। इस वर्ष परीक्षामें फेल हो जानेके कारण गर्मीकी छुट्टियोंमें घर नहीं गया है। उसके साथके और सब विद्यार्थी अपने अपने घर चले गये हैं। मैंने इस बातकी जाँच करनेका पक्का निश्चय कर लिया कि जब सभी विद्यार्थी इन लम्बी छुट्टियोंमें कलकत्ता छोड़कर भाग जाते हैं, तब इस भले मानसको किस दुष्ट ग्रहने पकड़ रखा है।

आखिर मैं भी विद्यार्थी बन गया और उसीके कमरेके एक हिस्सेमें जाकर रहने लगा। पहले ही दिन जब उसने मुझे देखा, तब वह कुछ ऐसे ढंगसे मेरे मुँहकी ओर निहार कर रह गया कि मैं उसका भाव अच्छी तरह न समझ सका। ऐसा जान पड़ा, मानो उसे कुछ आश्चर्य हुआ है और वह मेरा मतलब समझ गया है। मुझे निश्चय हो गया कि यह एक अच्छे शिकारीके योग्य शिकार है। इसपर कोई सरलतासे हाथ साफ नहीं कर सकता।

परन्तु जब मैंने उसके साथ मित्रता करनेकी चेष्टा की, तब वह सहज ही हाथ आ गया। उसने ज़रा भी आनाकानी नहीं की। पर यह जरूर मालूम हो गया कि वह भी मुझे गहरी नजरसे देखता है—वह भी मुझे पहचानना चाहता है। उस्तादोंका यही तो लक्षण है कि वे मनुष्य-चरित्रकी ओर इसी तरह सदा सतर्क और सजग रहते हैं। इतनी छोटी उमरमें उसकी इतनी चतुराई देखकर मैं बहुत ही खुश हुआ।

मैंने सोचा कि जब तक बीचमें एक सुन्दरी रमणी न लाई जायगी, तब तक इस अकाल-धूर्त छोकरेके हृदयका द्वार खुलना कठिन है।

एक दिन मैंने गद्गद कण्ठसे कहा—भाई मन्मथ, मैं एक स्त्रीको बहुत ही चाहता हूँ ; परन्तु वह मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती।

पहले तो उसने चकित होकर मेरे मुँहकी ओर देखा। इसके बाद कुछ हँसकर कहा—इस प्रकारके दुर्योग विरल नहीं हैं। कौतुकी विधाताने ऐसे तमाशे करनेके लिए ही तो नर-नारीका भेद किया है।

मैंने कहा—इस विषयमें मैं तुम्हारी सलाह और सहायता चाहता हूँ। वह दोनों देनेके लिए राजी हो गया।

तब मैंने एक लम्बा इतिहास गढ़कर उसे सुनाया। यद्यपि उसने उसे बड़े आग्रह और कुतूहलके साथ सुना; परन्तु स्वयं ज्यादा बातचीत नहीं की। मेरा खयाल था कि यदि प्यारकी—विशेषतः गर्हित प्यारकी—बात किसीके आगे खुलकर कह दी जाय, तो उससे बहुत जल्दी मित्रता बढ़ जाती है। परन्तु वर्तमान क्षेत्रमें इसका कोई लक्षण नहीं दिखलाई दिया। छोकरा पहलेसे भी गहरी चुप्पी साधकर रह गया और उसने सारी बातें सुनकर हृदयमें रख लीं। इससे उसके प्रति मेरी भक्ति और भी बढ़ गई।

इधर मन्मथ प्रति दिन द्वार बन्द करके क्या किया करता है और उसका गुप्त षड्यन्त्र किस तरह कितनी दूर आगे बढ़ा है, इसका कुछ भी पता मैं न लगा सका। परन्तु इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि वह आगे बढ़ रहा है। इस नवयुवकका मुख देखते ही यह मालूम हो जाता था कि वह किसी गूढ़ काममें लगा हुआ है और इस समय यह काम बहुत ही परिपक्व हो गया है। मैंने एक दूसरी चाबीसे उसका डेक्स खोलकर देखा, तो उसमें एक अत्यन्त दुर्बोध कविताकी पुस्तक, कालेजकी स्पीचोंके नोट्स, और घरके लोगोंकी दस पाँच महत्त्वहीन चिट्ठियोंको छोड़कर और कुछ भी न मिला और उन चिट्ठियोंसे केवल यही साबित हुआ कि घर आनेके लिए उससे बार बार प्रबल अनुरोध किया

गया है, तो भी वह घर नहीं गया। मैंने सोचा कि इसका कोई संगत कारण अवश्य है। परन्तु यदि वह न्यायसंगत होता, तो यह निश्चय है कि अब तक बातचीतमें खुल जाता। परन्तु वह बात नहीं हुई, इस कारण मन्मथका चालचलन और इतिहास मेरे निकट बहुत ही औत्सुक्यजनक बन गया। जिस असामाजिक मनुष्यसम्प्रदायने अपने आपको पाताल तलमें सर्वथा छिपाकर इस बृहत् मनुष्यसमाजको सर्वदा ही नीचेकी ओर दोलायमान कर रक्खा है, यह बालक उसी विश्वव्यापी बहुत पुरानी बड़ी भारी जातिका एक अंग है। यह किसी विद्यालयका एक मामूली विद्यार्थी नहीं है, बल्कि जगद्वक्षविहारिणी सर्वनाशिनीका एक प्रलय सहचर है जो आधुनिक समयके चश्माधारी निरीह भारतीय छात्रके वेशमें कालेजमें पढ़ रहा है।

आखिर मुझे एक सशरीर रमणीकी अवतारणा करनी पड़ी। पुलिससे वेतन पानेवाली हरिमति इस विषयमें मेरी सहायिका हुई। मैंने मन्मथसे कहा—मैं इसी हरमतिका हतभागा प्रणयाकांक्षी हूँ। इसको लक्ष्य करके मैं कुछ दिनों तक गोलदिग्घीमें मन्मथका पार्श्वचर बन कर "एरे मतिमंद चंद आवत न लाज तोहि, ह्वैके द्विजराज काज करते कसाईके" आदि कविताएँ बार बार पढ़ता रहा, और हरिमतिने भी कुछ हृदयके साथ तथा कुछ लीलापूर्वक प्रकट किया कि मैं अपना चित्त मन्मथको सौंप चुकी हूँ। परन्तु इन सब बातोंसे कोई आशानुरूप फल नहीं हुआ। मन्मथ सुदूर निर्लिप्त अविचलित कुतूहलके साथ सब कुछ पर्यवेक्षण करता रहा।

इसी समय एक दिन दो पहरको मुझे मन्मथकी मेजपर एक चिट्ठीके कितने ही टुकड़े पड़े दिखाई दिये। मैंने उन सबको एक एक करके उठा लिया और जोड़ जाड़कर उसमेंका यह एक अपूर्ण वाक्य पढ़ पाया—"आज सन्ध्याको सात बजे छिपकर मैं तुम्हारे डेरेपर—" बहुत

कुछ परिश्रम करने पर भी इससे अधिक और कोई बात मालूम न कर सका ।

परन्तु इतने वाक्यांशसे ही मेरा अन्तःकरण पुलकित हो उठा । जमीनके भीतर किसी विलुप्त-वंश प्राचीन प्राणीकी कोई हड्डी मिल जानेसे जिस तरह प्रत्नतत्त्ववेत्ताओंकी कल्पना आनन्दके आवेशमें नाच उठती है उसी तरह मैं भी नाच उठा ।

मैं जानता था कि आज रातको दस बजे हमारे डेरेपर हरिमति आनेवाली है । तब, उसके पहले ही शामको सात बजे यह क्या होनेवाला है ? सचमुच ही इस युवकमें जैसा साहस है, बुद्धि भी वैसी ही तीक्ष्ण है । यदि कोई गुप्त अपराधका काम करना हो, तो घरपर जिस दिन किसी दूसरे कामकी धूमधाम हो, उसी दिन मौका देखकर कर डालना चाहिए । क्योंकि ऐसे अवसरपर एक तो लोगोंकी दृष्टि प्रधान कामकी ओर ही आकृष्ट रहती है और दूसरे इस बातका किसीको विश्वास ही नहीं होता कि जहाँपर कोई विशेष समागम होता है, वहाँ उस दिन जान-बूझकर कोई गुप्त अपराधका भी काम किया जा सकता है ।

एकाएक मुझे सन्देह हुआ कि हमारे साथ जो नई मित्रता हुई है उसे, और हरिमतिके साथ जो प्रेमाभिनय चल रहा है उसे भी, मन्मथने अपनी कार्य-सिद्धिका एक उपाय बना लिया है । यही कारण है कि वह न तो स्वयं पकड़ाई देता है और न अपनेको छुड़ाकर अलग ही हो जाता है । वह इस भ्रमको भी दूर नहीं करना चाहता कि हम लोग उसके गुप्त कार्यमें बाधा-स्वरूप बन रहे हैं; और सभी समझते हैं कि वह हम लोगोंके कारण ही व्यापृत रहता है ।

इन सब तर्कोंपर एक बार विचार करके देख लेना चाहिए । इस विषयमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता कि जो विदेशी विद्यार्थी छुट्टीके दिनोंमें अपने नाते-रिश्तेदारोंकी विनय-अनुनयकी परवा न करके एक

निर्जन कमरेमें अकेला रहता है, उसके लिए एकान्त स्थानकी बहुत बड़ी जरूरत है। हम लोगोंने उसके कमरेमें अपना अड्डा जमाकर उसकी निर्जनताका भङ्ग कर दिया है और एक रमणीकी अवतारणा करके एक नया उपद्रव खड़ा कर दिया है। इतना होनेपर भी वह नाराज नहीं होता, कमरा नहीं छोड़ता, हम लोगोंकी संगतिसे दूर नहीं भागता। साथ ही यह भी निश्चय है कि हरिमति अथवा मेरे प्रति उसके हृदयमें तिल-भर भी आसक्ति उत्पन्न नहीं हुई है,—यहाँ तक कि उसकी असावधानीके समय मैंने बारबार लक्ष्य करके देखा है कि हम दोनोंके प्रति उसकी आन्तरिक घृणा बढ़ती ही जाती है। यह सब क्या है?

इसका एक मात्र तात्पर्य यही है कि यदि स-जनताकी सफाई पेश करके निर्जनताके सुभीतेसे लाभ उठाना हो, तो इसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि मेरे जैसे नवपरिचित आदमीको पास रख लिया जाय। और फिर किसी विषयमें जी-जानसे लग जानेके लिए रमणीके समान सहज बहाना और कोई नहीं है। अभी तक मन्मथका आचरण जैसा निरर्थक और सन्देहजनक था, हम लोगोंके आगमनके बाद वह वैसा नहीं रहा। निरर्थकता और सन्देहका अंश उसमेंसे सर्वथा लुप्त हो गया। परन्तु यह सोचकर मेरा हृदय उत्साहसे भर गया कि हमारे देश-में भी इतना बड़ा चुस्त चालाक और प्रत्युत्पन्नमति आदमी जन्म ले सकता है, जो इतनी दूरकी बात पलक मारते ही सोच लेता है। इस उत्साहके आवेशमें मैं मन्मथको गले लगाये बिना न रहता, यदि मुझे यह खयाल न होता कि वह न जाने क्या सोचेगा।

उस दिन मन्मथसे मुलाकात होते ही मैंने कहा—मैंने निश्चय किया है कि आज शामको सात बजे तुम्हें होटलमें ले चलकर खाना खिलाऊँ। यह सुनते ही वह चौंक-सा पड़ा, परन्तु तत्काल ही आत्म-संवरण करके

बोला—भाई माफ करो, आज मेरे पाक-यंत्रकी अवस्था बहुत ही शोचनीय है। परन्तु इसके पहले मैंने कभी किसी कारणसे मन्मथको होटलके भोजनसे इनकार करते नहीं देखा था—तब आज निश्चय ही उसकी अन्तरिन्द्रिय नितान्त दुरूह अवस्थाको प्राप्त हो गई है।

उस दिन यह निश्चय हो चुका था कि मैं सन्ध्याके समय डेरे पर न रहूँगा; किन्तु मैंने गले पड़कर इस तरहकी बातोंका सिलसिला जारी कर दिया कि शाम हो आई, तो भी वे समाप्त न हुईं; समय टलने लगा। तो भी जब मैंने वहाँसे खिसकनेका कोई लक्षण प्रकट नहीं किया, तब मन्मथ मन ही मन अस्थिर हो उठा। मेरी सभी बातोंमें वह सम्मतिसूचक रूपसे गर्दन हिलाता गया—किसी बातका उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया। आखिर घड़ीकी ओर दृष्टिपात करके वह व्याकुल हो उठा और उठकर बोला—क्या आज आप हरिमतिको लेने नहीं जायँगे? मैंने तत्काल ही चौंककर कहा—हाँ हाँ, यह तो मैं भूल ही गया था। अच्छा तो मैं जाता हूँ। तब तक तुम आहारादि तैयार कर रखना। मैं उसे यहाँ ठीक साढ़े दस बजे लाकर उपस्थित कर दूँगा। यह कहकर मैं वहाँसे चल दिया।

आनन्दका नशा मेरे सारे शरीरके रक्तमें संचरण करने लगा। संध्याको सात बजेके प्रति मन्मथकी जितनी उत्सुकता हो रही थी, मेरी उत्सुकता भी उससे कम नहीं थी। मैं अपने डेरेके करीब ही एक जगह छिपकर रह गया और प्रेयसी-समागमोत्कण्ठित प्रणयीके समान बार-बार अपनी घड़ीकी ओर देखने लगा। जब गोधूलिका अन्धकार सघन होने लगा और सड़कोंके लैम्प जलनेका समय हो गया, तब एक परदेदार पालकीने हमारे डेरेमें प्रवेश किया। यह कल्पना करके मेरे सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया कि इस आच्छन्न पालकीके भीतर आँसुओंसे भीगा हुआ एक अवगुण्ठित पाप, एक मूर्तिमती ट्रेजिडी, विराज-

मान है और वह कालेजके छात्र-निवासके बीच कितने ही धीवरोंके कंधों पर चढ़कर हा हू हा हू शब्द करती हुई अनायास ही प्रवेश कर रही है।

अब मुझसे और अधिक विलम्ब सहन नहीं हुआ। थोड़ी ही देरके बाद मैं धीरे धीरे ज़ीने परसे ऊपरकी मंजिल पर चढ़ गया। इच्छा थी कि गुपचुप रहकर ही सब कुछ देख सुन लूँगा; परन्तु ऐसा नहीं हुआ। क्योंकि ज़ीनेके सामनेके कमरेमें ही मन्मथ ज़ीनेकी ओर मुँह किये बैठा था और कमरेकी दूसरी ओर पीठ किये हुए एक अवगुण्ठिता नारी बैठी हुई मृदु स्वरसे बात कर रही थी। जब देखा कि मन्मथने मुझे देख लिया है, तब जल्दीसे कमरेमें प्रवेश करते ही मैंने कहा—भाई, मेरी घड़ी कमरेमें ही रह गई है, उसे लेने आया हूँ। मन्मथ इस तरह घबरा गया कि मानो वह अभी जमीन चूमने लगेगा। मैं कौतुक और आनन्दसे बहुत ही व्यग्र हो उठा और बोला—भाई, क्या तुम्हें कोई तकलीफ है? परन्तु वह इस प्रश्नका कुछ भी उत्तर न दे सका। तब मैंने उस कठपुतलीके समान निश्चल घूँघटवाली नारीकी ओर घूमकर पूछा—आप मन्मथकी कौन होती हैं? उसने यद्यपि कोई उत्तर नहीं दिया, तथापि देखा कि वह मन्मथकी कोई नहीं है, मेरी स्त्री है! इसके बाद क्या हुआ सो कहनेकी जरूरत नहीं।

लीजिए पाठक! मेरे जासूसी व्यवसायका 'श्रीगणेश' इसी गहरी सफलताके साथ होता है।

कुछ समय बाद मैंने (लेखकने) डिटेक्टिव इन्स्पेक्टर बाबू महिमचन्द्रसे कहा—हो सकता है कि मन्मथके साथ तुम्हारी स्त्रीका सम्बन्ध समाज-विरुद्ध न हो।

महिमचन्द्रने कहा—न होनेकी सम्भावना ही अधिक है। क्योंकि मेरी स्त्रीके सन्दूकसे मन्मथकी एक चिट्ठी बरामद हुई है। यह कहकर उसने वह चिट्ठी मेरे हाथमें रख दी। वह इस प्रकार थी—

"श्रीमती...

"जान पड़ता है, इतने दिनोंमें तुम मन्मथको भूल गई होगी। बालकपनमें जब मैं अपने मामाके घर जाता था, तब वहाँ सर्वदा ही तुम्हारे साथ खेला करता था। हम लोगोंके वे खेल और खेलनेके सम्बन्ध अब नहीं रहे हैं। मालूम नहीं तुम जानती हो या नहीं कि एक बार मैंने धैर्यका बाँध तोड़कर और लज्जाको ताकमें रखकर तुम्हारे साथ विवाह-सम्बन्ध करनेका भी प्रस्ताव किया था; किन्तु हम दोनोंकी अवस्था लगभग बराबर थी, इस कारण दोनों ही पक्षके लोगोंने उसे अनुचित ठहरा दिया था।

"उसके बाद तुम्हारा विवाह हो गया। चार पाँच वर्षतक तुम्हारा कोई कुशल-संवाद नहीं मिला। कोई पाँच महीने हुए होंगे, मुझे समाचार मिला कि तुम्हारे पति तबदील होकर कलकत्ते आ गये हैं। तब मैंने यहाँ तुम्हारे घरका पता लगाया।

"मैं तुमसे मुलाकात करनेकी दुराशा नहीं रखता और अन्तर्यामी जानते हैं कि तुम्हारे गार्हस्थ्य सुखके भीतर एक उपद्रवके समान प्रवेश करनेकी मेरी इच्छा भी नहीं है। सन्ध्याके समय तुम्हारे घरके सामनेके एक गैस-पोष्टके नीचे मैं सूर्योपासकके समान खड़ा रहता हूँ। तुम प्रति दिन ठीक साढ़े सात बजे अपनी अटारीकी दाहिनी ओरके कमरेकी काँचकी खिड़कीके सामने एक लैम्प जलाकर रखा करती हो और उस समय थोड़ी देरके लिए तुम्हारी दीपालोकित प्रतिमा मेरी आँखोंमें आकर बस जाती है—यदि मैंने तुम्हारा कोई अपराध किया है तो बस यही एक।

"इस बीचमें मेरा तुम्हारे पतिके साथ परिचय और धीरे धीरे मैत्री-बन्धन भी हो गया है। उनके चरित्रका मुझे अब तक जो कुछ पता लगा है, उससे मेरा विश्वास हो गया है कि तुम्हारा जीवन सुखी नहीं

है। यद्यपि तुम्हारे ऊपर मेरा कोई सामाजिक अधिकार नहीं है, किन्तु जिस विधाताने तुम्हारे दुःखको मेरे दुःखमें परिणत कर दिया है, उसीने उस दुःखको दूर करनेके प्रयत्न करनेका भार भी मेरे कन्धोंपर डाला है।

"अतएव मेरी गुस्ताखी माफ करके, शुक्रवारकी सन्ध्याको ठीक सात बजे, चुपचाप पालकीमें बैठकर, यदि तुम केवल बीस मिनटके लिए मेरे डेरेपर आ जाओगी, तो मैं तुम्हारे पतिके संबंधमें बहुत ही गुप्त बातें बतलाऊँगा। यदि तुम उनपर विश्वास न करोगी और सहन कर सकोगी, तो मैं तत्सम्बन्धी प्रमाण भी तुम्हारे सामने पेश कर सकूँगा और साथ ही कुछ परामर्श भी दूँगा। मैं भगवानको साक्षी देकर आशा करता हूँ कि उन परामर्शोंके अनुसार चलनेसे तुम एक दिन अवश्य सुखी हो सकोगी।

"मेरा यह प्रयत्न सर्वथा निःस्वार्थ नहीं है। थोड़ी देरके लिए मैं तुम्हें अपने सम्मुख देख सकूँगा, तुम्हारी बातें सुनूँगा और तुम्हारे चरणोंके स्पर्शसे अपने कमरेको चिरकालके लिए सुख-स्वप्नमंडित बना लूँगा, यह आकांक्षा भी मेरे हृदयमें है। यदि तुम मेरा विश्वास न कर सकती हो और यदि इस सुखसे भी मुझे वंचित करना चाहती हो, तो मुझे वैसा लिख देना। मैं उसके उत्तरमें सब बातें पत्रके द्वारा ही लिख भेजूँगा। यदि पत्र लिखनेका विश्वास भी न हो, तो मेरा यह पत्र अपने पतिको दिखला देना, तब मुझे जो कुछ कहना है, वह उनसे ही कह दूँगा।"

दुर्बुद्धि

मुझे अपना पैतृक मकान छोड़ देना पड़ा। क्यों और कैसे, सो खुलासा करके न बतलाऊँगा—केवल आभास ही दूँगा। मैं एक कसबेकी सरकारी अस्पतालका डाक्टर हूँ। पुलिसके थानेके सामने मेरा मकान है। यमराजके साथ मेरी जितनी मित्रता है दारोगा साहबके साथ भी उससे कम नहीं। जिस तरह मणिसे वलयकी (कड़ेकी) और वलयसे मणिकी* शोभा बढ़ती है उसी तरह मेरी मध्यस्थतासे दारोगा साहबकी और दारोगा साहबकी मध्यस्थतासे मेरी आर्थिक श्रीवृद्धि होती थी।

इन सब कारणोंसे वर्तमान नियमोंके जानकार दारोगा ललितचक्रवर्तीके साथ मेरी गहरी मित्रता थी। उनके किसी सम्बन्धीकी एक सयानी कन्या थी। दारोगा साहब उसके साथ विवाह करनेके लिए मुझसे सदा ही अनुरोध किया करते और इस तरह उन्होंने मुझे तंग

---

* मणिना वलयं वलयेन मणिर्मणिना वलयेन विभाति करः।

कर रक्खा था। किन्तु मैंने अपनी एकमात्र मातृहीना कन्या सावित्रीको विमाताके हाथ सौंपना उचित न समझा। प्रतिवर्ष ही नये पंचांगके अनुसार विवाहके न जाने कितने मुहूर्त निकले और व्यर्थ चले गये। न जाने कितने योग्य और अयोग्य पात्र मेरी आँखोंके सामनेसे वर बनकर गृहस्थ बन गये; परन्तु मैं केवल उनके ब्याहोंकी मिठाइयाँ खाकर और लम्बे-लम्बे साँस खींचकर ही रह गया।

सावित्रीने बारह पूरे करके तेरहवें वर्षमें पैर रक्खा। मैं विचार कर रहा था कि कुछ रुपयोंका इन्तजाम हो जाय तो लड़कीको किसी अच्छे घरमें ब्याह दूँ और उसके बाद ही अपने ब्याहकी चिन्ता करूँ। इसी समय हरनाथ मजूमदार आया और मेरे पैरोंपर पड़कर रोने लगा। बात यह थी कि उसकी विधवा लड़की रातको एकाएक मर गई और इस मौकेको व्यर्थ खो देना अच्छा न समझकर उसके शत्रुओंने दारोगा साहबको एक बेनामका पत्र लिखकर सूचना दे दी कि विधवा गर्भवती थी। गर्भपात करनेका जो प्रयत्न किया गया, उसीमें उसकी जान चली गई। बस यह संवाद पाते ही पुलिसने हरनाथका घर घेर लिया और विधवाकी लाशका संस्कार करनेमें रुकावट डाल दी।

एक तो लड़कीका शोक व्याकुल कर रहा था और उसपर यह असह्य अपवादकी चोट ! बेचारा बूढ़ा अस्थिर हो उठा। बोला—आप डाक्टर भी हैं और दारोगा साहबके मित्र भी हैं, किसी तरह मुझे बचाइए।

लक्ष्मीजीकी लीला विचित्र है। जब वे चाहती हैं तब इस तरह बिना ही बुलाई छप्पर फाड़कर आ जाती हैं। मैंने गर्दन हिलाकर कहा—मामला तो बड़ा बेढब है ! और अपनी बातको प्रमाणित करनेके लिए दो-चार कल्पित उदाहरण भी दे दिये। बूढ़ा हरनाथ काँप उठा और बच्चेकी नाईं रोने लगा।

अन्तमें मामला ठीक हो गया और हरनाथको अपने लड़कीके शव-संस्कार करनेकी आज्ञा मिल गई; परन्तु इसमें वह बिल्कुल बरबाद हो गया।

उसी दिन शामको सावित्रीने मेरे पास आकर करुणापूर्ण स्वरसे पूछा—पिताजी, आज वह बूढ़ा ब्राह्मण तुम्हारे पैरों पड़कर क्यों रोता था? मैंने उसे धमकाकर कहा—तुझे इन बातोंसे मतलब! चल अपना काम कर!

इस मामलेसे कन्या-दान करनेका मार्ग साफ हो गया। लक्ष्मीजी बड़े अच्छे मौकेपर प्रसन्न हुईं। विवाहका दिन निश्चित हो गया। एक ही कन्या थी, इसलिए खूब तैयारियाँ की गईं। घरमें कोई स्त्री नहीं थी, इसलिए पड़ोसियोंसे सहायता लेनी पड़ी। हरनाथ अपना सर्वस्व खो चुका था, तो भी मेरा उपकार मानता था और इसलिए इस काममें मुझे जीजानसे सहायता देने लगा।

विवाह-समारंभ पूरा नहीं हो पाया। जिस दिन हलदी चढ़ाई गई उसी दिन रात्रिको तीन बजे सावित्रीको हैजा हो गया। बहुत उपाय किये गये, परन्तु लाभ कुछ भी नहीं हुआ। अन्तमें दवाइयोंकी शीशियाँ जमीनपर पटककर मैं भागा और हरनाथके पैरों पड़कर गिड़गिड़ाकर कहने लगा—बाबा, क्षमा करो, इस पापीको क्षमा करो, सावित्री मेरी एकमात्र कन्या है। संसारमें इसे छोड़कर मेरा और कोई नहीं है।

हरनाथ मेरे कथनका कुछ भी मतलब नहीं समझा; वह घबड़ाकर बोला—डाक्टर साहब, आप यह क्या करते हैं! मैं आपके उपकारसे दबा हुआ हूँ; मेरे पैरोंको मत छुओ!

मैंने कहा—बाबा, तुम निरपराध थे, तो भी मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया है। मेरी कन्या उसी पापसे मर रही है।

यह कहकर मैं सब लोगोंके सामने चिल्लाचिल्लाकर कहने लगा—

भाइयो, मैंने मनमाने रुपया लूटाकर इस वृद्ध ब्राह्मणका सर्वनाश कर डाला है, अब मैं उसका फल भोग रहा हूँ। भगवान्, मेरी सावित्रीकी रक्षा करो। इसके बाद मैं हरनाथके जूते उठाकर अपने सिरमें तड़ातड़ मारने लगा! वृद्ध घबड़ा गया, उसने मेरे हाथसे जूते छीन लिये।

दूसरे दिन १० बजे हरिद्रा-रंग-रंजित सावित्री इस लोकसे बिदा हो गई।

इसके दूसरे ही दिन दारोगा साहबने कहा—डाक्टर साहब, क्या सोच रहे हो? घर-गिरस्तीकी सार-संभालके लिए एक आदमी तो चाहिए ही; फिर अब विवाह क्यों नहीं कर डालते?

मनुष्यके मर्मान्तिक दुःख-शोकके प्रति इस तरहकी निष्ठुर अश्रद्धा किसी शैतानको भी शोभा नहीं दे सकती। इच्छा तो हुई कि दारोगा साहबको दो चार सुना दूँ; परन्तु समय समयपर मैं उनके सामने जिस मनुष्यत्वका परिचय दे चुका था उसकी याद आ जानेसे इस समय मेरा मुँह उत्तर देनेको नहीं खुल सका। उस दिन ऐसा मालूम हुआ कि दारोगाकी मित्रताने चाबुक मारकर मेरा अपमान किया है!

हृदय चाहे जितना व्यथित हो—कष्ट चाहे जितना आकर पड़े; परन्तु कर्म-चक्र चलता ही रहता है—संसारके काम-काज बन्द नहीं होते। सदाकी नाईं भूखके लिए आहार, पहरनेको कपड़े, और तो क्या चूल्हेके लिए ईंधन और जूतोंके लिए फीते तक, पूरे उद्योगके साथ संग्रह किये बिना काम नहीं चलता।

यदि कभी काम-काजसे फुरसत पाकर मैं घरमें अकेला आकर बैठता तो बीचबीचमें वही करुण-कण्ठका प्रश्न कानके पास आकर

ध्वनित होने लगता—"वह बूढ़ा तुम्हारे पैरों पड़कर क्यों रोता था ?" और उस समय मेरे हृदयमें शूलकी-सी वेदना होने लगती।

मैंने दरिद्र हरनाथके जीर्ण घरकी मरम्मत अपने खर्चसे करा दी। एक दुधारू गाय उसे दे दी और उसकी जो जमीन महाजनके यहाँ गिरवी रक्खी गई थी उसका भी उद्धार करा दिया।

मैं कन्या-शोककी दुःसह वेदनासे कभी कभी रात-रातभर करवटें बदलता पड़ा रहता—घड़ी-भरको भी नींद न आती। उस समय सोचता कि यद्यपि मेरी कोमलहृदया कन्या संसार-लीलाको शेष करके चली गई है, तो भी उसे अपने बापके निष्ठुर दुष्कर्मोंके कारण परलोकमें भी शान्ति नहीं मिल रही है—वह मानो व्यथित होकर बार बार यही प्रश्न करती है कि—पिताजी, तुमने ऐसा क्यों किया ?

कुछ दिन तक मेरा यह हाल रहा कि मैं गरीबोंका इलाज करके उनसे फ़ीसके लिए तकाजा न कर सकता। यदि किसी लड़कीको कोई बीमारी हो जाती तो ऐसा मालूम होता कि मेरी सावित्री ही सारे गाँवकी बीमार लड़कियोंके बीचमें रोग भोग रही है।

एक दिन मूसलधार पानी बरसा। सारी रात बीत गई, पर वर्षा बन्द न हुई। जहाँ तहाँ पानी ही पानी दिखाई देने लगा। घरसे बाहर जानेके लिए भी नावकी जरूरत पड़ने लगी।

उस दिन मेरे लिए मालगुजार साहबके यहाँसे बुलावा आया। मालगुजारकी नावके मल्लाहोंको मेरा जरा भी विलम्ब सह्य नहीं हो रहा था; वे तकाजेपर तकाजा कर रहे थे।

पहले जब कभी ऐसे मौकेपर मुझे कहीं बाहर जाना पड़ता, तब सावित्री मेरे पुराने छातेको खोलकर देखती कि उसमें कहीं छिद्र तो नहीं है और फिर कोमल कण्ठसे सावधान कर देती कि पिताजी, हवा बहुत तेजीसे चल रही है और पानी भी खूब बरस रहा है, कहीं ऐसा न हो कि सर्दी लग जाय। उस दिन अपने शून्य शब्दहीन घरमें अपना छाता स्वयं खोजते समय मुझे उस स्नेहपूर्ण मुखकी याद आ गई और मैं सावित्रीके बन्द कमरेकी ओर देखकर सोचने लगा कि जो मनुष्य दूसरेके दुःखोंकी परवा नहीं करता है, भगवान् उसे सुखी करनेके लिए उसके घरमें सावित्री जैसी स्नेहकी चीज कैसे रख सकता है ? यह सोचते सोचते मेरी छाती फटने लगी। उसी समय बाहरसे मालगुजार साहबके नौकरोंके तकाजेका शब्द सुन पड़ा और मैं किसी तरह शोक संवरण करके बाहर निकल पड़ा।

नावपर चढ़ते समय मैंने देखा कि थानेके घाटपर एक किसान लँगोटी लगाये हुए बैठा है और पानीमें भीग रहा है। पास ही एक छोटी-सी डोंगी बँध रही है। मैंने पूछा—क्यों रे, यहाँ पानीमें क्यों भीग रहा है ? उत्तरसे मालूम हुआ कि कल रातको उसकी कन्याको साँपने काट खाया है, इसलिए पुलिस उसे रिपोर्ट लिखानेके लिए थानेमें घसीट लाई है। देखा कि उसने अपने शरीरके एक मात्र वस्त्रसे कन्याका मृत शरीर ढक रक्खा है। इसी समय मालगुजारीके जल्दबाज़ मल्लाहोंने नाव खोल दी।

कोई एक बजे मैं वापस आ गया। देखा कि तब भी वह किसान हाथ पैरोंको सिकोड़कर छातीसे चिपटाये बैठा है और पानीमें भीग रहा है। दारोगा साहबके दर्शनोंका सौभाग्य उसे तब भी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने घर जाकर रसोई बनाई और उसका कुछ

भाग किसानके पास भेज दिया ; परन्तु उसने उसका स्पर्श भी न किया ।

जल्दी जल्दी आहारसे छुट्टी पाकर मैं मालगुजारके रोगीको देखनेके लिए फिर घरसे बाहर हुआ । संध्याको वापस आकर देखा तो उस किसानकी दशा खराब हो रही है । वह बातका उत्तर नहीं दे सकता, मुँहकी ओर टकटकी लगाकर देखता है । उस समय नदी, गाँव, थाना, मेघाच्छन्न आकाश और कीचड़मय पृथ्वी आदि सब चीजें उसे स्वप्नके जैसी मालूम होती थीं । बारबार पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि उससे एक सिपाहीने आकर पूछा कि 'तेरे पास कुछ रुपये हैं या नहीं' और इसके उत्तरमें उसने कह दिया कि 'मैं बहुत ही गरीब हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है ।' सिपाही तब यह कहकर चला गया, 'तो कुछ नहीं हो सकता, यहीं पड़े रहना पड़ेगा ।'

मैंने इस प्रकारके दृश्य सैकड़ों ही बार देखे थे, पर उनका मेरे चित्त-पर कुछ भी असर नहीं पड़ा था ; मगर उस दिन उस किसानकी दशा मुझसे नहीं देखी गई—मेरा हृदय विदीर्ण होने लगा । सावित्रीके करुणा-गद्गद कण्ठका स्वर जहाँ तहाँसे सुनाई पड़ने लगा और उस कन्या-वियोगी वाक्यहीन किसानका अपरिमित दुःख मेरी छातीको चीरकर बाहर होने लगा ।

दारोगा साहब बेतकी कुर्सीपर बैठे हुए आनन्दसे हुक्का पी रहे थे । उनके पूर्वोक्त सम्बन्धी महाशय भी वहीं बैठे हुए गप्पें हाँक रहे थे जो कि अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ करना चाहते थे । वे इस समय इसी कामके लिए वहाँ पधारे थे । मैं झपटता हुआ पहुँचा और दारोगा साहबसे चिल्लाकर बोला—"आप मनुष्य हैं या राक्षस ?" इसके साथ ही मैंने अपने सारे दिनकी कमाईके रुपये उनके सामने फेंक दिये और कहा—"रुपया चाहिए तो ये ले लो, जब मरोगे तब इन्हें साथ ले

जाना ; परन्तु इस समय इस गरीब को छुट्टी दे दो, जिससे यह अपनी कन्याका अन्तिम संस्कार कर सके !"

दारोगा साहबका जो प्रेम-मैत्री-विटप अनेक दुखियोंके आँसुओंके सेचनसे लहलहा रहा था, वह इस आकस्मिक आँधीसे गिरकर जमीनमें मिल गया !

इसके थोड़े ही दिन बाद मैंने दारोगा साहबसे क्षमा-प्रार्थना की, उनकी महदाशयताकी स्तुति की और अपनी मूर्खताको बारबार धिक्कारा ; परन्तु आखिर मुझे अपना घर छोड़ना ही पड़ा ।

अतिथि

१

काँठालके जमींन्दार बाबू मोतीलाल नाव किराए करके अपने परिवारसहित स्वदेश जा रहे थे। रास्तेमें दोपहरके समय उन्होंने नदी-तटके एक बाजारके पास नाव बँधवा दी और वहीं रसोई आदि बनानेका आयोजन करने लगे। इतनेमें एक ब्राह्मण बालकने उनके पास आकर पूछा—बाबूजी, आप लोग कहाँ जायँगे? बालककी अवस्था पन्द्रह सोलह वर्षसे अधिक न होगी।

मोती बाबूने उत्तर दिया—हम लोग काँठाल जायँगे।

ब्राह्मण बालकने पूछा—क्या आप मुझे रास्तेमें नन्दीगाँवमें उतार देंगे?

मोती बाबूने उसे रास्तेमें उतार देना मंजूर कर लिया और पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

ब्राह्मण बालकने उत्तर दिया—मेरा नाम तारापद है।

गोरे रंगका वह बालक देखनेमें बहुत सुन्दर था। उसकी बड़ी बड़ी आँखों और हँसते हुए होठोंसे बहुत ही ललित सुकुमारता प्रकट होती थी। वह केवल एक मैली धोती पहने था। उसका शेष सारा शरीर नंगा था। उसके सब अङ्ग बहुत ही सुडौल थे। ऐसा जान पड़ता था कि किसी बहुत अच्छे कारीगरने बहुत यत्नसे उसके सब अङ्ग बहुत ध्यानपूर्वक गढ़े हैं। मानो वह पूर्व-जन्ममें तापस-बालक था और निर्मल तपस्याके प्रभावसे उसके शरीरमेंसे सारे शारीरिक विकार बहुत अधिक परिमाणमें निकल जानेसे एक सम्मार्जित ब्रह्मण्यश्री उसमेंसे प्रस्फुटित हो उठी है।

मोती बाबूने बहुत ही स्नेहपूर्वक कहा—बेटा, तुम जाकर स्नान कर आओ। तुम्हारा भोजन यहीं होगा!

तारापदने कहा—अच्छा आप भोजन बनाइए।

इतना कहकर वह बालक बिना किसी प्रकारके संकोचके रसोई बनानेमें सहायता देने लगा। बाबू मोतीलालका नौकर हिन्दुस्तानी था। मछली चीरने और काटने आदिके काममें वह उतना अधिक निपुण नहीं था। तारापदने वह काम उसके हाथसे ले लिया और थोड़ी ही देरमें उसे अच्छी तरह सम्पन्न भी कर दिया। इसके सिवा उसने एक दो तरकारियाँ भी ऐसी अच्छी तरह पका दीं जिससे जान पड़ा कि वह इन कामोंमें अच्छा अभ्यस्त है। जब रसोई पक चुकी, तब तारापदने नदीमें स्नान करके अपनी छोटी-सी गठरी खोलकर उसमेंसे एक सफेद धोती निकालकर पहनी, काठकी एक छोटी कंघी निकालकर अपने सिरके बड़े बड़े बाल माथे परसे हटाकर पीछे गर्दनकी ओर डाल दिये और स्वच्छ यज्ञोपवीत धारण किये हुए वह नावमें बाबू मोतीलालके पास जा पहुँचा।

मोती बाबू उसे नावके अन्दर ले गये। वहाँ मोती बाबूकी स्त्री और नौ वर्षकी उनकी कन्या दोनों बैठी हुई थीं। इस सुन्दर बालकको देखकर मोती बाबूकी स्त्री अन्नपूर्णाका हृदय प्रेमसे भर गया। वह मन ही मन सोचने लगी—आहा! यह किसका बालक है, कहाँसे आ रहा है—इसे छोड़कर भला इसकी मा कैसे सुखसे रहती होगी—उससे कैसे रहा जाता होगा!—

थोड़ी देरमें मोती बाबू और इस छोटे बालकके लिए पास ही पास दो आसन बिछ गये। बालक बहुत ही कम भोजन कर रहा है, यह देखकर अन्नपूर्णाने मनमें सोचा कि यह कुछ संकोच कर रहा है। उसने उससे बहुत अनुरोध किया कि थोड़ा यह खा लो, थोड़ा वह खा लो। पर जब उसका पेट भर गया, तब फिर उसने कोई अनुरोध नहीं माना। सब लोगोंने देखा कि यह बालक सब काम अपनी ही इच्छासे करता है और ऐसे सहजमें करता है कि किसीको यह नहीं जान पड़ता कि वह जिद करता है या अपनी ही बात रखना चाहता है। उसके व्यवहारमें कहीं लज्जाका नाम भी नहीं दिखाई देता।

जब सब लोग भोजन कर चुके, तब अन्नपूर्णाने उसे अपने पास बैठाकर बहुत-सी बातें पूछीं और उसका विस्तृत इतिहास जानना चाहा; पर कुछ बहुत अधिक पता नहीं चला। बस यही पता चला कि यह बालक सात आठ वर्षकी अवस्थामें ही अपनी इच्छासे घर छोड़कर भाग आया है।

अन्नपूर्णाने पूछा—तुम्हारी माँ नहीं हैं?

तारापदने कहा—हैं।

अन्नपूर्णाने फिर पूछा—क्या वे तुम्हें नहीं चाहतीं?

तारापदको मानो उसका यह प्रश्न बहुत ही अद्भुत जान पड़ा। वह जोरसे हँस पड़ा और बोला—क्यों, चाहती क्यों नहीं!

अन्नपूर्णाने फिर पूछा—तो फिर तुम उसे छोड़कर चले कैसे आये ?

तारापदने कहा—उसके और भी चार लड़के और तीन लड़कियाँ हैं।

बालकका यह अद्भुत उत्तर सुनकर अन्नपूर्णा बहुत ही दुःखी हुई। उसने कहा—वाह, भला यह भी कोई बात है ! हाथमें पाँच उँगलियाँ हैं, तो क्या इसलिए एक उँगली काट डाली जाय ?

तारापदकी अवस्था कम थी और इसी लिए उसका इतिहास भी बहुत ही संक्षिप्त था। पर फिर भी उसमें बहुत ही विलक्षणता और नवीनता थी। वह अपने पिता-माताका चौथा पुत्र था और छोटी अवस्थामें ही पितृहीन हो गया था। यद्यपि उसकी माताकी कई सन्तानें थीं, तथापि घरमें उसका बहुत आदर था। माँ, भाई, बहनें और पास पड़ोसके लोग सभी उसके साथ बहुत अधिक प्रेम करते थे। यहाँ तक कि गुरुजी भी कभी उसे मारते पीटते नहीं थे। यदि कभी वे उसे कुछ मार भी बैठते तो उसके अपने पराए सभी लोगोंको बहुत अधिक दुःख होता। ऐसी दशामें उसके लिए घर छोड़कर भागनेका कोई कारण नहीं था। जो लड़का उपेक्षित और रोगी-सा था, सदा ही चुरा चुराकर पेड़ोंके फल और उन पेड़ोंके मालिकोंसे प्रतिफलस्वरूप चौगुनी मार खाकर इधर उधर घूमा करता था, वह तो अपनी परिचित ग्राम-सीमामें मारपीट करनेवाली माँके पास पड़ा रह गया; और सारे गाँवका प्यारा यह बालक विदेशी रासधारियोंके दलके साथ प्रसन्नतापूर्वक गाँव छोड़कर भाग आया।

सब लोग उसे ढूँढ़कर फिर गाँवमें ले आये। माताने उसे कलेजेसे लगाकर लगातार रोते रोते उसका सारा शरीर आँसुओंसे भिगो दिया। उसकी बहनें भी रोने लगीं। उसके बड़े भाईने पुरुष अभिभावकका कठिन

कर्तव्य पालन करनेके लिए उसे पहले तो बहुत ही साधारण रूपसे कुछ डाँटने डपनेकी चेष्टा की और अन्तमें बहुत ही अनुतप्त हृदयसे बहुत अश्वासन और पुरस्कार दिया। पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ उसे अपने अपने घर बुलाकर उसका बहुत आदर करतीं और उसे बहुत कुछ प्रलोभन देकर बाँधना चाहतीं। पर इन बन्धनोंको, यहाँ तक कि स्नेहबन्धनको भी उसने कुछ न समझा। उसके जन्मकालके नक्षत्रोंने ही उसे गृहहीन बना दिया था। वह जब देखता कि विदेशी मल्लाह लोग गून खींचकर नदीमेंसे नावें ले जा रहे हैं, अथवा गाँवके बड़े बड़के वृक्षके नीचे किसी दूर देशसे आकर कोई संन्यासी ठहरा है, अथवा कंजड़ लोग नदी-किनारेके पड़े हुए मैदानमें छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बाँधकर बाँस छील छील कर टोकनियाँ और डालियाँ तयार कर रहे हैं, तब बाहरी अज्ञात पृथ्वीकी स्नेहहीन स्वाधीनताके लिए उसका चित्त अशान्त हो उठता। जब वह लगातार दो तीन बार घर छोड़ छोड़कर भागा, तब उसके घरके लोगों तथा गाँववालोंने उसकी आशा छोड़ दी।

पहले वह रासधारियोंके एक दलके साथ हो गया। उस दलका प्रधान उसे पुत्रके समान चाहता और वह दलके सभी छोटे बड़े आदमियोंका प्रेमपात्र बन गया—यहाँ तक कि जिस घरमें रासलीला होती उस घरके मालिक और विशेषतः स्त्रियाँ भी उसे बहुत मानतीं और विशेष रूपसे उसे अपने पास बुलाकर उसका बहुत आदर किया करतीं। इतना सब कुछ होने पर भी वह एक दिन बिना किसीसे कुछ कहे सुने, न जाने कहाँ, चला गया और फिर किसीको उसका पता नहीं लगा।

तारापदको बन्धनसे उतना ही डर लगता, जितना हिरनके बच्चेको लगता है; और हिरनके ही समान वह संगीतका भी प्रेमी था। रासधारियोंके संगीतने ही पहले पहल घरसे उसका मन उचाट किया था। संगीतका स्वर सुनते ही उसके शरीरकी नसें काँपने लगतीं। और गाने-

के ताल पर उसका सारा शरीर हिलने लगता। जिस समय वह बहुत छोटा था, उस समय भी संगीत-सभामें वह इस प्रकार संयत और गम्भीर वयस्कके समान आत्म-विस्मृत होकर बैठा बैठा हिला करता कि उसे देखकर बूढ़े लोगोंको अपनी हँसी रोकना कठिन हो जाता। केवल संगीत ही क्यों, जिस समय वृक्षोंके घने पत्तोंपर श्रावणकी वृष्टि-की धारा पड़ती, आकाशमें मेघ गरजता, जंगलमें मातृहीन दैत्य-शिशुके रोनेके समान हवाकी सनसनाहट होती, उस समय भी उसका चित्त मानो बहुत ही उच्छृङ्खल हो उठता। जब निस्तब्ध दोपहरके समय बहुत दूर आकाशमें चील चिल्लाती, वर्षा ऋतुमें सन्ध्याके समय मेंढक बोलते, गम्भीर रात्रिमें गीदड़ चिल्लाते, तब भी वह मानो उतावला-सा होकर बहक उठता। इसी संगीतके मोहसे आकृष्ट होकर वह शीघ्र ही भजनीकोंके एक दलमें आकर सम्मिलित हो गया। भजनीकोंके उस दलका अध्यक्ष बहुत ही यत्नपूर्वक उसे गाना सिखलाया करता और उसे अपने भजन तथा गीत आदि कंठ कराया करता। वह उसे अपने हृदय-रूपी पिंजरेके पक्षीके समान प्रिय समझता और उसके साथ स्नेह करता। परन्तु पक्षीने कुछ कुछ गाना सीखा और एक दिन प्रातःकाल वह वहाँसे उड़कर चला गया!

अन्तिम बार वह एक जिम्नास्टिक-वालोंके दलमें जा मिला। उस प्रान्तमें ज्येष्ठ मासके अन्तसे लेकर आषाढ़ मासके अन्त तक स्थान स्थानपर एकके बाद एक, अनेक मेले हुआ करते हैं। उन्हीं मेलोंमें जाकर कमाने खानेके लिए कई रासधारी, गाने बजानेवाले भजनीक, कवि, नाचनेवाली स्त्रियाँ और तरह तरहकी चीजें बेचनेवाले दूकान-दार आदि नावोंपर चढ़कर छोटी छोटी नदियों और उपनदियों आदिमेंसे होते हुए एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाया करते हैं। पिछले वर्षसे कलकत्तेके जिम्नास्टिक-वालोंका भी एक छोटा-

सा दल इन मेलोंके आमोद-चक्रमें योग दिया करता था। तारापदने पहले तो नाववाले एक दूकानदारके साथ मिलकर पान बीड़े बेचनेका भार लिया। इसके उपरान्त अपने स्वभाविक कुतूहलके कारण वह जिम्नास्टिक-वाले बालकोंका व्यायाम-नैपुण्य देखकर उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उन्हींके दलमें जा मिला। तारापदने स्वयं ही अभ्यास करके बहुत अच्छी तरह वंशी बजाना सीख लिया था। जिस समय जिम्नास्टिक होता, उस समय वह द्रुत तालमें वंशीमें लखनऊकी ठुमरी बजाया करता। बस यही उसका एक काम था।

अन्तिम बार वह इसी दलमेंसे भागा था। उसने सुना कि नन्दीग्रामके जमींदार लोग मिलकर यात्रा या रास-धारियोंकी एक बहुत बड़ी मंडली खड़ी कर रहे हैं। यही सुनकर वह अपनी छोटी-सी गठरी लेकर नन्दीग्राम जानेका आयोजन करने लगा और इसी बीचमें मोती बाबूके साथ उसकी भेंट हो गई।

यद्यपि तारापद कई दलोंमें रह चुका था, पर अपनी प्रकृतिके कारण उसने किसी दलकी कोई विशेषता नहीं प्राप्त की थी। अपने अन्तरमें वह सदा पूर्णरूपसे निर्लिप्त और मुक्त था। वह संसारकी अनेकों कुत्सित बातें सदा सुना करता और अनेक कदर्य दृश्य उसकी आँखोंके सामनेसे गुजरते; परन्तु उन सब बातोंको उसके मनमें संचित होनेका तिलमात्र भी अवसर नहीं मिला। इस लड़केका उन सब बातोंमेंसे किसीपर भी ध्यान नहीं। जिस प्रकार और किसी तरहका कोई बन्धन उसे नहीं बाँध सकता था, उसी प्रकार अभ्यास-बन्धन भी उसके मनको बद्ध नहीं कर सका। वह इस संसारके गँदले जलके ऊपर शुभ्र-पक्ष राजहंसकी भाँति सदा अलग ही घूमा करता। वह अपने कुतूहलके कारण उस गँदले जलमें चाहे जितने बार डुबकी लगाता, पर फिर भी उसके पंख गीले या मलिन नहीं हुए। इसी लिए इस गृह-

त्यागी बालकके मुखपर एक शुभ्र स्वाभाविक तारुण्य अम्लान भावसे प्रकाशित हो रहा था। उसके मुखकी वही श्री देखकर वृद्ध अनुभवी मोतीलाल बाबूने उससे बिना कुछ पूछे ही और उसपर बिना किसी प्रकारका सन्देह किये ही उसे परम आदरपूर्वक अपने साथ ले लिया।

२

जब सब लोग भोजन आदि कर चुके, तब नाव खोल दी गई। अन्नपूर्णा बहुत ही स्नेहपूर्वक इस ब्राह्मण बालकसे उसके घर तथा आत्मीय परिजनों आदिकी बातें पूछने लगी। तारापदने उसके सब प्रश्नोंका बहुत ही संक्षेपमें उत्तर देकर किसी प्रकार अपनी जान छुड़ाई और वह बाहर आकर खड़ा हो गया। बाहर वर्षाकी नदी परिपूर्णताकी अन्तिम रेखा तक भर उठी और उसने अपनी चंचलतासे प्रकृति माताको मानो उद्विग्न कर दिया। आकाशमें बादल न होनेके कारण धूप बहुत तेज हो रही थी। उस धूपमें नदीके तटपर काँस तथा दूसरे अनेक प्रकारके तृण आदि आधे पानीमें डूबे हुए थे और आधे बाहर निकले हुए। उनके ऊपर सरस सघन ऊखके खेत और उनकी दूसरी ओर बहुत दूर दूर तक नीलांजन वर्णकी वन-रेखा थी। मानो ये सब पुरानी कहानीकी सोनेकी छड़ीके स्पर्शसे सद्य-जाग्रत नवीन सौन्दर्यके समान निर्वाक् नीलाकाशकी मुग्ध दृष्टिके सामने प्रस्फुटित हो उठे थे। सभी मानो सजीव, स्पन्दित, प्रगल्भ, आलोकके द्वारा उद्भासित, नवीनतासे चिकने, चमकते हुए तथा प्रचुरतासे परिपूर्ण थे।

तारापदने नावकी छतपर पहुँचकर पालकी छायामें आश्रय लिया। धीरे धीरे ढालुए हरे भरे किनारे, पानीसे भरे हुए पटसनके खेत, गाढ़ श्यामल धानोंका लहराना, घाटसे गाँवकी ओर जानेवाली संकीर्ण

पगडंडियाँ, घने वनोंसे घिरे हुए छायामय ग्राम, उसकी आँखोंके सामने आने लगे। यही जल, स्थल और आकाश, यही चारों ओरकी सचलता, सजीवता और मुखरता, यही ऊर्ध्व अधोदेशकी व्याप्ति और वैचित्र्य तथा निर्लिप्त सुदूरता, यही सुबृहत् चिरस्थायी निर्निमेष वाक्य-विहीन विश्व जगत् उस तरुण बालकका सबसे बड़ा आत्मीय (अपना) था। फिर भी वह इस चंचल मानव-कटिको एक क्षणके लिए भी स्नेह-बाहुसे पकड़ रखनेकी चेष्टा नहीं करता था। बछड़े अपनी रस्सी तुड़ाकर नदीके तटपर दौड़ रहे थे। गाँवोंके टट्टू रस्सीसे बँधे हुए अगले दोनों पैरोंसे उछलते हुए घास खाते फिरते थे। मच्छीखोर (पक्षी) मछुओंके जाल बाँधनेके बाँसोंके ऊपरसे बहुत वेगके साथ धपसे जलमें कूदकर मछलियाँ पकड़ रहे थे। लड़के जलमें उतरकर अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ कर रहे थे। स्त्रियाँ जोर जोरसे हँसती हुई आपसमें बातें करती जाती थीं और छाती तक जलमें उतरकर अपनी धोतियोंके आँचल फैलाकर दोनों हाथोंसे उन्हें मलमलकर साफ कर रही थीं। मछली बेचनेवाली स्त्रियाँ, कमर बाँधे हुए, मछुओंसे मछलियाँ खरीद रही थीं। तारापद बैठा बैठा सदा नवीन बने रहनेवाले अश्रान्त कुतूहलसे यह सब देख रहा था—उसकी दृष्टिकी प्यास किसी तरह बुझती ही न थी।

नावकी छतपर पहुँचकर तारापदने पालकी रस्सी थामनेवाले मल्लाहसे बातें करना आरम्भ कर दिया। बीच बीचमें आवश्यकता पड़नेपर वह मल्लाहके हाथसे लग्गी लेकर आप भी दस पाँच हाथ लगा दिया करता था। जब मल्लाहको तमाखू पीनेकी आवश्यकता हुई, तब उसने उसके हाथसे पतवार ले ली; और जब जिधर पाल घुमानेकी आवश्यकता हुई, तब बहुत ही दक्षतापूर्वक उसे भी उधर घुमा दिया।

जब सन्ध्या होनेको आई, तब अन्नपूर्णाने उसे बुलाकर पूछा—रातके समय तुम क्या खाया करते हो?

तरापदने कहा—जो कुछ मिल जाय, वही खा लेता हूँ। और फिर मैं नित्य तो रातको खाता भी नहीं।

आतिथ्य-ग्रहणमें इस सुन्दर बालककी उदासीनता अन्नपूर्णाको कुछ कुछ कष्ट देने लगी। वह बहुत चाहती थी कि मैं अच्छी तरह खिला पहनाकर इस गृहच्युत बालकको भली भाँति तृप्ति कर दूँ। पर उसे किसी प्रकार इस बातका पता ही न चला कि आखिर किस बातसे तारापदका परितोष होता है। अन्नपूर्णाने नौकरको बुलाकर गाँवसे दूध और मिठाई आदि खरीद लानेके लिए कहा। तारापदने यथापरिमाण आहार तो कर लिया ; परन्तु दूध नहीं पीया। मौन-स्वभाव मोतीलाल बाबूने भी उससे दूध पी लेनेके लिए अनुरोध किया। पर उसने संक्षेपमें यही कह दिया कि मुझे दूध अच्छा नहीं लगता।

इसी प्रकार नदीमें नावपर ही दो तीन दिन बीत गये। तारापद रसोई बनाने और परोसने तथा बाजारसे सौदा सुलफ लानेसे लेकर नाव चलाने तकके सभी कामोंमें अपनी इच्छा और बहुत ही तत्परतासे योग दिया करता था। जो दृश्य उसकी आँखोंके सामने आता था, उसी ओर उसकी कुतूहलपूर्ण दृष्टि दौड़ जाती थी। जो काम उसके हाथके आगे आ जाता था, उसमें वह आप ही आप आकृष्ट होकर लग जाता था। उसकी दृष्टि, उसके हाथ, उसका मन सभी सदा सचल रहा करते थे और इसी लिए वह नित्य सचला प्रकृतिके समान सदा निश्चिन्त, उदासीन और सदा क्रिया-सक्त रहता था। प्रत्येक मनुष्यकी एक निजकी स्वतंत्र अधिष्ठान-भूमि हुआ करती है। परन्तु तारापद इस अनन्त नीलाम्बरवाही विश्व-प्रवाहमें एक आनन्दोज्ज्वल तरंगके समान था। भूत या भविष्यके साथ उसका किसी प्रकारका कोई बन्धन नहीं था। सामनेकी ओर बढ़े चलना ही उसका एक मात्र कार्य था।

इधर बहुत दिनोंसे वह अनेक प्रकारकी मण्डलियों और सम्प्रदायों आदिके साथ रहता आया था, इसलिए अनेक प्रकारकी मनोरंजन करनेकी विद्याएँ उसे अच्छी तरह आ गई थीं। कभी किसी प्रकारकी चिन्तासे आच्छन्न न रहनेके कारण उसके निर्मल स्मृति-पटपर सभी चीजें बहुत ही सहज भावसे मुद्रित हो जाती थीं। अनेक प्रकारके भजन, कीर्तन, कथाएँ और अभिनय आदि उसे कण्ठ थे। बाबू मोतीलाल अपनी बहुत दिनोंकी प्रथाके अनुसार एक दिन संध्या समय अपनी स्त्री और कन्याको रामायण पढ़कर सुना रहे थे। कुश और लवका प्रकरण था। उस समय तारापद अपने उत्साहको न रोक सका और नावकी छतपरसे नीचे उतरकर बोला—आप पुस्तक रख दीजिए। मैं कुश और लवसम्बन्धी कुछ गीत आप लोगोंको सुनाता हूँ। आप लोग जरा ध्यानपूर्वक सुनिए।

इतना कहकर उसने लव और कुशके सम्बन्धकी कथाके गीत आरम्भ कर दिये। वंशीके समान अपने मीठे स्वरसे वह धाराप्रवाहकी भाँति अनेक प्रकारके गीत सुनाने लगा। सब मल्लाह आदि भी द्वारके पास गीत सुननेके लिए आ खड़े हुए। उस नदी-तटके संध्या समयके आकाशमें हास्य, करुणा और संगीतसे एक अपूर्व स्रोत प्रवाहित होने लगा। दोनों ओरके निस्तब्ध तटोंकी भूमि कुतूहलपूर्ण हो उठी। वहाँ पाससे होकर जो नावें जा रही थीं, उनके आरोही भी थोड़ी देरके लिए उत्कण्ठित होकर उसी ओर कान लगाकर सुनने लगे। जब गीत और कथा समाप्त हो गई, तब सब लोग व्यथित चित्तसे ठण्डी सांस लेकर सोचने लगे कि यह कथा और यह गीत इतनी जल्दी क्यों समाप्त हो गया !

सजलनयना अन्नपूर्णाकी यह इच्छा होने लगी कि इस बालकको मैं अपनी गोदमें बैठाकर और कलेजेसे लगाकर उसका मस्तक सूँघूँ।

बाबू मोतीलाल सोचने लगे कि यदि इस बालकको मैं अपने पास रख सकूँ, तो मेरे पुत्रवाले अभावकी पूर्ति हो जाय। केवल छोटी बालिका चारुशशिका अन्तःकरण ईर्ष्या और विद्वेषसे परिपूर्ण हो उठा।

२

चारुशशि अपने माता-पिताकी एक मात्र सन्तान और उनके स्नेहकी एक मात्र अधिकारिणी थी। उसके हठ और जिद आदिका कोई ठिकाना नहीं था। खाने पहनने और सिरके बाल गूँथने आदिके सम्बन्धमें उसका मत बिलकुल स्वतंत्र और निजका था; पर उस मतमें कभी किसी प्रकारकी स्थिरता नहीं दिखाई देती थी। जिस दिन कहीं किसी प्रकारका निमंत्रण आदि होता था, उस दिन उसकी माताको इस बातका डर ही लगा रहता था कि कहीं मेरी लड़की अपने बनाव-सिंगारके सम्बन्धमें कोई असम्भव जिद न ठान बैठे। यदि संयोगवश किसी दिन उसके सिरके बाल उसके मनके मुताबिक नहीं बँधते थे, तो उस दिन फिर उसके बाल चाहे जितनी बार खोलकर क्यों न बाँधे जाते, वह किसी तरह मानती ही न थी और अन्तमें खूब रोना चिल्लाना हुआ करता था। सभी बातोंमें उसकी यही दशा थी। और जब किसी समय उसका चित्त प्रसन्न रहता था, तब वह कभी किसी बातपर कोई आपत्ति ही नहीं करती थी। उस समय वह बहुत अधिक प्रेम प्रकट करती हुई जोरसे अपनी माँके गलेसे लिपट जाती थी और उसे चूमकर हँसती हँसती लोट-पोट हो जाती थी। यह छोटी लड़की एक ऐसी पहेली थी, जो किसी प्रकार समझमें ही नहीं आती थी।

यह बालिका अपने दुर्बोध्य हृदयके सारे वेगका उपयोग करके मन

ही मन तारापदसे बहुत अधिक विद्वेष करने लगी। माता पिताको भी उसने पूरी तरहसे उद्विग्न कर दिया। भोजनके समय वह रोना-सा मुँह बनाकर थाली अपने आगेसे खिसका देती थी। उसे भोजन अच्छा ही नहीं लगता था। कभी कभी वह दासीको भी मार बैठती थी। तात्पर्य यह कि सभी बातोंमें वह बिना कारण ही झगड़ा बखेड़ा किया करती थी। तारापदकी विद्या उसका तथा और सब लोगोंका जितना ही अधिक मनोरंजन करने लगी, उसका क्रोध भी उतना ही अधिक बढ़ने लगा। उसका मन यह बात स्वीकृत करनेके लिए तैयार ही नहीं था कि तारापदमें किसी प्रकारका कोई गुण है। और जब इस बातके अधिकाधिक प्रमाण मिलने लगे कि उसमें कुछ गुण हैं, तब उसके असन्तोषकी मात्रा और भी अधिक बढ़ गई। जिस दिन तारापदने लव और कुशके भजन सुनाये थे, उस दिन अन्नपूर्णाने मनमें सोचा था कि संगीतसे वनके पशु भी वशमें हो जाते हैं; इस लिए आज कदाचित् मेरी कन्याका मन भी कुछ शान्त हो गया होगा। इस लिए उसने उससे पूछा भी था—चारु, तुम्हें ये गीत कैसे लगे? पर चारुशशिने उसके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया और बहुत जोरसे सिर हिला दिया। यदि उसकी इस भंगीका भाषामें अनुवाद किया जाय, तो उसका यही अर्थ होगा कि मुझे यह सब जरा भी अच्छी नहीं लगा और न कभी अच्छा लगेगा।

अन्नपूर्णाने समझ लिया कि चारुके मनमें इर्ष्याका उदय हुआ है, इसलिए उसने चारुके सामने तारापदके प्रति अपना स्नेह प्रकट करना बन्द कर दिया। सन्ध्याके समय जब चारु जल्दी ही भोजन करके सो जाती थी, तब अन्नपूर्णा नावकी कोठरीके दरवाजेपर आ बैठती थी। मोती बाबू और तारापद दोनों दरवाजेके बाहर बैठते थे और अन्नपूर्णाके अनुरोधसे तारापद गीत और भजन आदि आरम्भ करता था।

उसके गीतसे जब नदी-तटकी विश्राम करती हुई ग्रामश्री सन्ध्याके विपुल अन्धकारमें मुग्ध तथा निस्तब्ध हो जाती थी और अन्नपूर्णाका कोमल हृदय स्नेह तथा सौन्दर्य-रससे परिपूर्ण हो जाता था, उस समय चारु सहसा बिछौनेपरसे उठ बैठती थी और जल्दी जल्दी वहाँ पहुँचकर क्रोधपूर्वक रोती हुई कहती थी—माँ, तुम लोगोंने यह क्या बखेड़ा लगा रक्खा है। मुझे नींद नहीं आती। माता पिता उसे अकेली सोनेके लिए भेज देते हैं और तारापदको घेरकर संगीतका आनन्द लेते हैं, यह बात उसे बहुत ही असह्य होती थी। दीप्त कृष्ण नयनोंवाली इस बालिकाकी स्वाभाविक सुतीव्रता तारापदको बहुत ही अधिक कौतुक-जनक जान पड़ती थी। उसने कथाएँ सुनाकर, गीत गाकर, वंशी बजाकर इस बालिकाको वश करनेकी बहुत चेष्टा की, पर वह किसी प्रकार कृतकार्य न हो सका। हाँ, केवल दोपहरके समय जब तारापद नदीमें स्नान करनेके लिए उतरता था और परिपूर्ण जलराशिमें अपने गौर-वर्ण शरीरसे तरह तरहसे तैरकर तरुण जलदेवताके समान शोभा पाता था, उस समय उस बालिकाका कुतूहल आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता था। वह सदा उसी समयकी प्रतीक्षा किया करती थी। पर फिर भी वह अपना यह आन्तरिक आग्रह किसीपर प्रकट नहीं होने देती थी और मन लगाकर ऊनी गुलूबन्द बुननेका अभ्यास करते करते बीच बीचमें मानो बहुत ही उपेक्षापूर्वक तारापदका तैरना देख लिया करती थी।

४

नन्दीग्राम कब पीछे छूट गया, इस बातकी तारापदने कुछ भी खोज खबर नहीं ली। अत्यन्त मृदु मन्द गतिसे वह बड़ी नाव कभी पाल उड़ाकर, कभी गूनसे खिचकर नदीकी शाखा प्रशाखाओंमेंसे होकर चलने लगी। नावकी सवारियोंके दिन भी इन सब नदी और

उपनदियोंके समान शान्ति और सौन्दर्यसे पूर्ण वैचित्र्यमेंसे होकर सहज और सौम्य भावसे गमन करते हुए मृदु और मिष्ट कलस्वरसे प्रवाहित होने लगे। किसीको कोई जल्दी तो थी ही नहीं। दोपहरके समय स्नान और भोजन आदिमें ही बहुत अधिक बिलम्ब हो जाया करता था। उधर सन्ध्या होते न होते कोई बड़ा-सा वटवृक्ष देखकर किसी गाँवके किनारे घाटके निकट किसी झिल्लीझंकृत और खद्योत-खचित वनके पास नाव बाँध दी जाया करती थी।

इस प्रकार कोई दस दिनोंमें नाव काँठाल पहुँची। जमींदार आ रहे थे, इसलिए घरसे पालकी और घोड़ा आया था; और हाथ में बाँस की लाठियाँ लिये हुए बरकन्दाजोंके दलने बन्दूकोंकी खाली आवाजोंसे गाँवके उत्कण्ठित कौओंको इतना अधिक मुखर बना दिया था जिसका कोई ठिकाना ही नहीं था।

इस समारोहमें कुछ बिलम्ब हो रहा था। इस बीचमें तारापद नाव-परसे जल्दी उतर कर सारे गाँवका एक चक्कर लगा आया। उसने किसीको भाई, किसीको चचा, किसीको बहिन और किसीको मौसी कहकर दो तीन घंटेके अन्दर ही गाँव भरके साथ सौहार्द-बन्धन स्थापित कर लिया। उसके लिए कहीं कोई प्रकृत बन्धन तो था ही नहीं, इस-लिए वह बहुत ही जल्दी और बहुत ही सहजमें सबके साथ परिचय कर लेता था। थोड़े ही दिनोंमें देखते देखते तारापदने गाँवके सभी लोगोंके हृदयोंपर अधिकार कर लिया।

इतने सहजमें हृदय हरण करनेका कारण यही था कि तारापद सब लोगोंके साथ बिलकुल आपसदारोंकी तरह मिल जुल सकता था। वह किसी प्रकारके विशेष संस्कारके द्वारा तो बद्ध था ही नहीं, पर सभी अवस्थाओंमें सभी कार्योंके प्रति उसकी एक प्रकारकी सहज प्रवृत्ति हुआ करती थी। बालकोंमें वह पूर्ण रूपसे स्वभाविक बालक था; परन्तु

उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ और स्वतंत्र वृद्धोंके निकट वह बालक नहीं था, साथ ही वृद्ध भी नहीं था। ग्वालोंके साथ वह ग्वाला, साथ ही ब्राह्मण भी था। सभी लोगोंके समस्त कामोंमें वह पुराने सहयोगीकी भाँति अभ्यस्त भावसे हस्तक्षेप किया करता था। जब वह हलवाईकी दूकान-पर बैठकर उससे बातें किया करता था, तब हलवाई कहता था—भइया, जरा बैठे रहना, मैं अभी आता हूँ। उस समय तारापद भी प्रसन्नतापूर्वक दूकानपर बैठा बैठा एक बड़ा-सा पत्ता लेकर मिठाई-परकी मक्खियाँ उड़ाने लगता था। मिठाई बनानेमें भी वह बहुत होशियार था। ताँतीका काम भी कुछ कुछ जानता था और कुम्हारका चाक चलानेसे भी बिलकुल अनभिज्ञ नहीं था।

इस तरह तारापदने गाँवके सभी लोगोंको अपना बना लिया था, केवल ग्रामवासिनी एक बालिकाकी ईर्ष्यापर वह अब तक भी विजय नहीं प्राप्त कर सका था। जान पड़ता था कि तारापद इस गाँवमें केवल इसी लिए इतने दिनों तक रह गया था कि वह जानता था कि यह बालिका मुझे किसी दूर देशमें निर्वासित करनेकी बहुत ही तीव्र भावसे कामना कर रही है।

परन्तु चारुशशिने इस बातका प्रमाण दे दिया कि बाल्यावस्थामें भी नारीके हृदयके अन्दरका रहस्य समझना बहुत ही कठिन है।

सोनामणि नामकी एक ब्राह्मण-कन्या—जो पाँच वर्षकी अवस्थामें विधवा हो गई थी—चारुकी समवयसी सखी थी। उस समय सोना-मणि शरीरसे कुछ अस्वस्थ थी; इसलिए जब चारु लौटकर घर आई थी, तब कुछ दिनों तक वह उससे भेंट करनेके लिए न आ सकी थी। जब वह अच्छी हो गई और एक दिन उससे भेंट करनेके लिए आई, तब उसी दिन प्रायः बिना कारण ही दोनों सखियोंमें कुछ मनोमालिन्य होनेका उपक्रम हो गया।

चारुने बहुत विस्तारसे बातें करना आरम्भ किया। उसने सोचा था कि मैं तारापद नामक अपने नवीन अर्जित किये हुए परम रत्नके आदरणकी बातें बहुत ही विस्तारपूर्वक वर्णन करके अपनी सखीका कुतूहल और विस्मय सप्तमपर चढ़ा दूँगी। पर जब उसने सुना कि तारापद सोनामणिके लिए कुछ भी अपरिचित नहीं है; सोनाकी माँको वह मौसी कहता है और सोनामणि उसे भइया कहती है; जब उसने सुना कि तारापदने केवल वंशी बजाकर ही माता और कन्याका मनोरंजन नहीं किया है, बल्कि सोनामणिके अनुरोधसे उसने अपने हाथसे उसके लिए बाँसकी वंशी भी बना दी है; उसने कई बार उसके लिए ऊँची शाखाओंसे फल और कँटीली शाखाओंसे फूल तोड़ दिये हैं, तब चारुके अन्तःकरणमें जलता हुआ तीर-सा बिधने लगा। चारु समझती थी कि तारापद विशेष रूपसे मेरा ही तारापद है। वह समझती थी कि तारापद बहुत ही गुप्त रूपसे संरक्षित रखनेकी चीज है। दूसरे लोगोंको उसका थोड़ा बहुत आभास मात्र मिलेगा—उसके पास तक किसीकी भी पहुँच नहीं होगी। सब लोग दूरसे ही उसके रूप और गुणपर मुग्ध होंगे और उसके लिए हम लोगोंको धन्यवाद दिया करेंगे। पर अब वह सोचने लगी कि यह आश्चर्यदुर्लभ दैव-लब्ध ब्राह्मण बालक सोनामणिके लिए क्यों कर सहज-गम्य हो गया? यदि हम लोग इतने यत्नसे उसे यहाँ न लाते, इतने यत्नसे उसे अपने यहाँ न रखते, तो सोनामणिको उसके दर्शन कहाँसे मिलते? वह सोनामणिका भाई है! सुनकर उसका सारा शरीर जल उठा!

चारु जिस तारापदको मन ही मन विद्वेषके शरसे जर्जर करनेकी चेष्टा किया करती थी, उसीके एकाधिकारके लिए उसके मनमें इस प्रकारका प्रबल उद्वेग क्यों हुआ?—भला किसकी मजाल है कि यह बात समझ सके!

उसी दिन एक और तुच्छ बातपर सोनामणि और चारुशशिमें भीतरी गाँठ पड़ गई और उसने तारापदकी कोठरीमें जाकर, उसकी वंशी निकालकर, उसपर कूदकूदकर निर्दयतापूर्वक उसे तोड़ना शुरू कर दिया।

चारु जिस समय बहुत ही क्रोधमें आकर उस वंशीको तोड़-फोड़ रही थी, उसी समय तारापद वहाँ आ पहुँचा। बालिकाकी यह प्रलय-मूर्त्ति देखकर वह चकित हो गया। उसने पूछा—चारु, तुम मेरी वंशी क्यों तोड़ रही हो? तुमने यह क्या किया! चारुने लाल आँखें और लाल मुँह करके कहा—मैंने अच्छा किया! बहुत अच्छा किया! इतना कहकर उसने उस टूटी हुई वंशीपर और दो चार बार अनावश्यक पदाघात करके उसका कचूमर निकाल डाला और तब उच्छ्वसित कंठसे रोती हुई वह उस कोठरीसे बाहर निकल गई। तारापदने वह वंशी उठाकर उलट पुलटकर देखी; उसमें कुछ भी दम नहीं रह गया था। अकारण अपनी पुरानी निरपराध वंशीकी यह आकस्मिक दुर्दशा देखकर वह अपनी हँसी न रोक सका। चारुशशि दिनपर दिन उसके लिए परम कुतूहलकी चीज होती जाती थी।

उसके लिए कूतूहलका एक और भी क्षेत्र था। मोतीलाल बाबूकी लाइब्रेरीमें अँगरेजीकी बहुत-सी तसवीरदार किताबें थीं। बाहरी संसारके साथ तो उसका यथेष्ट परिचय हो चुका था, पर इन तसवीरोंके जगतमें वह किसी प्रकार अच्छी तरह प्रवेश नहीं कर सकता था। वह अपने मनसे कल्पनाके द्वारा उसकी बहुत कुछ पूर्त्ति कर लिया करता था, पर उससे उसके मनकी कुछ भी तृप्ति नहीं होती थी।

तसवीरोंवाली पुस्तकोंके प्रति तारापदका इतना अधिक आग्रह देखकर एक दिन मोतीलाल बाबूने कहा—तुम अँगरेजी पढ़ोगे? यदि पढ़ लोगे, तो इन सब चित्रोंका मतलब समझने लगोगे।

तारापदने तुरन्त उत्तर दिया—हाँ, मैं अँगरेजी पढ़ूँगा।

मोतीलाल बाबूने बहुत प्रसन्नतासे गाँवके स्कूलके हेडमास्टर बाबू रामरतनको नित्य सन्ध्या समय आकर उस बालकको पढ़ानेके कामपर नियुक्त कर दिया

५

तारापद अपनी प्रखर स्मरणशक्ति और अखंड मनोयोगसे अँगरेजी सीखने लगा। वह मानो एक नवीन और दुर्गम राज्यमें भ्रमण करनेके लिए बाहर निकल पड़ा। उसने अपने पुराने संसारके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा। अब वह गाँवके लोगोंको पहलेकी भाँति जहाँ तहाँ घूमता दिखाई नहीं देता। जब वह सन्ध्याके समय निर्जन नदी-तटपर जल्दी जल्दी चलता हुआ अपना पाठ कण्ठ किया करता, तब उसका उपासक बालक-सम्प्रदाय दूरहीसे कुछ दुःखी चित्तसे आदरपूर्वक उसे देखा करता; उसके पाठमें बाधा देनेका उसे साहस नहीं होता।

चारुको भी आजकल वह बहुत अधिक नहीं दिखाई देता। पहले तारापद अन्तःपुरमें जाकर अन्नपूर्णाकी स्नेहपूर्ण दृष्टिके सामने बैठकर भोजन किया करता था। पर इससे बीच बीचमें उसे कुछ विलम्ब हो जाया करता था; इसलिए उसने मोतीलाल बाबूसे अनुरोध करके अपने लिए बाहर ही भोजन मँगानेकी व्यवस्था कर ली। इसपर अन्नपूर्णाने दुःखी होकर विरोध भी किया। परन्तु मोतीलाल बाबू पढ़ने लिखनेमें बालकका उत्साह देखकर बहुत सन्तुष्ट थे; इसलिए उन्होंने इस व्यवस्थाका अनुमोदन कर दिया।

उसी समय चारु भी सहसा जिद कर बैठी कि मैं भी अँगरेजी पढ़ूँगी। उसके माता-पिताने पहले अपनी अल्हड़ लड़कीके इस प्रस्ताव-

को परिहासका विषय समझा और वे स्नेहपूर्वक हँस पड़े ; परन्तु कन्या-ने उस प्रस्तावके परिहास्य अंशको प्रचुर अश्रुजलकी धारासे बहुत ही जल्दी धोकर दूर कर दिया। अन्तमें इन स्नेहदुर्बल निरुपाय अभिभावकोंने बालिकाका वह प्रस्ताव गम्भीर भावसे स्वीकार कर लिया। अब चारु भी तारापदके साथ ही मास्टर साहबसे अँगरेजी पढ़ने लगी।

परन्तु पढ़ना लिखना इस अस्थिर-चित्त बालिकाके स्वभावके अनुकूल नहीं था। वह स्वयं तो कुछ भी न सीखती ; हाँ, तारापदके सीखनेमें बाधा अवश्य डालने लगी। वह पिछड़ जाती और अपना पाठ कण्ठ नहीं करती ; पर फिर भी किसी प्रकार तारापदसे पीछे नहीं रहना चाहती। जब तारापद उससे आगे बढ़कर नया पाठ सीखने लगता, तब वह बहुत नाराज होती ; यहाँ तक कि रोने-धोनेसे भी बाज नहीं आती। जब तारापद एक पुरानी पुस्तक समाप्त करके दूसरी नई पुस्तक खरीदने लगता, तब उसके लिए भी एक नई पुस्तक खरीदनी पड़ती। तारापद फुरसतके समय अपनी कोठरीमें बैठकर लिखा करता और अपना पाठ कण्ठ किया करता। पर उस ईर्ष्या-परायणा बालिकाको यह बात सह्य नहीं होती। वह छिपकर उसकी लिखनेकी कापीपर स्याही गिरा देती; कलमको ही कहीं छिपाकर रख दिया करती ; यहाँ तक कि पुस्तकका जो पृष्ठ वह पढ़ता, उस पृष्ठको ही फाड़ दिया करती। तारापद बहुत ही कौतुकपूर्वक इस बालिकाका यह सब दौरात्म्य सहन किया करता। पर जब उसे बहुत असह्य हो जाता, तब वह कभी कभी उसे थोड़ा बहुत मार भी बैठता ; पर फिर भी किसी प्रकार उसका शासन नहीं कर सकता।

संयोगसे एक उपाय निकल आया। तारापद एक दिन बहुत ही विरक्त होकर स्याही गिरी हुई अपनी लिखनेकी कापी फाड़कर बहुत

ही दुःखी पर गम्भीर भावसे बैठा हुआ था। इतनेमें चारु दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। वह मन ही मन सोचती थी कि आज मुझे जरूर मार पड़ेगी। परन्तु उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई। तारापदने उससे बात न की और वह चुपचाप बैठा रहा। बालिका कभी कोठरीके अन्दर आती और कभी बाहर चली जाती। वह बार बार उसके बहुत पास पहुँच जाती। यदि तारापद चाहता, तो सहजमें ही उसकी पीठपर धौल जमा सकता था। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया और वह चुपचाप गम्भीर भाव धारण किये हुए बैठा रहा। बालिका बहुत मुश्किलमें पड़ गई। क्षमा-प्रार्थना किस प्रकार की जाती है, इस विद्याका तो उसने आज तक कभी कोई अभ्यास किया ही नहीं था; पर उसका अनुतप्त क्षुद्र हृदय अपने सहपाठीसे क्षमा प्राप्त करनेके लिए बहुत अधिक कातर हो रहा था। अन्तमें कोई उपाय न देखकर उसने उस फटी हुई कापीका एक टुकड़ा उठा लिया और तारापदके पास बैठकर उसपर बहुत बड़े बड़े अक्षरोंमें लिखा—अब मैं कभी कापीपर स्याही न गिराऊँगी। जब वह लिख चुकी, तब उस लेखकी ओर तारापदका ध्यान आकर्षित करनेके लिए वह अनेक प्रकारकी चंचलताएँ करने लगी। यह देखकर तारापद अपनी हँसी न रोक सका। वह ठठाकर हँस पड़ा। उस समय बालिका लज्जा और क्रोधसे पागल हो गई और जल्दीसे दौड़कर कोठरीके बाहर चली गई। उसके हृदयका वह निदारुण क्षोभ तभी मिट सकता था जब कि वह कागजके उस टुकड़ेको, जिसपर उसने अपने हाथसे लिखकर दीनता प्रकट की थी, अनन्त काल और अनन्त जगतसे पूर्ण रूपसे विनष्ट कर सकती।

उधर संकुचित-चित्त सोनामणि दो एक दिन आकर उस कमरेमें बाहरहीसे ताक झाँककर चली गई थी, जिस कमरेमें तारापदके साथ चारु पढ़ा करती थी। सखी चारुशशिके साथ सभी बातोंमें उसको

बहुत अधिक घनिष्ठता थी ; परन्तु तारापदके सम्बन्धमें वह चारुको बहुत अधिक भय और सन्देहकी दृष्टिसे देखा करती थी। चारु जिस समय अन्तःपुरमें होती थी, ठीक उसी समय सोनामणि संकोचपूर्वक तारापदके दरवाजेके पास आकर खड़ी हो जाती। तारापद पढ़ना छोड़कर सिर उठाकर स्नेहपूर्वक पूछता—क्यों सोना, क्या हाल चाल है ? मौसी कैसी हैं ?

सोनामणि कहती—तुम तो उधर बहुत दिनोंसे आते ही नहीं हो। माँने तुमको जरा बुलाया है। माँकी कमरमें दर्द है ; इसी लिए वह तुम्हें देखनेके लिए यहाँ नहीं आ सकती।

ऐसे ही समयमें यदि सहसा चारु वहाँ आ पहुँचती तो सोनामणि हक्की-बक्की-सी होकर रह जाती। मानो वह छिपकर अपनी सखीकी सम्पत्ति चुरानेके लिए आई हो। चारु अपना स्वर सप्तमपर चढ़ाकर कहती—क्यों सोना, तुम पढ़नेके समय दिक करनेके लिए आई हो ? मैं अभी जाकर बाबूजीसे कह दूँगी। चारु मानो स्वयं ही तारापदकी प्रवीण अभिभाविका हो। मानो दिन रात उसका ध्यान केवल इसी बातपर रहता हो कि तारापदके पढ़ने लिखनेमें लेश मात्र भी बाधा न पड़े। परन्तु वह स्वयं किस अभिप्रायसे इस असमयमें तारापदके पढ़नेके कमरेमें आ पहुँचती, यह अन्तर्यामीके लिए अगोचर नहीं था और तारापद भी अच्छी तरह जानता था। परन्तु बेचारी सोनामणि बहुत ही भयभीत होकर तुरन्त ही एक बिलकुल झूठी कैफियत गढ़ लेती। अन्तमें चारु जब घृणापूर्वक उसे मिथ्यावादी ठहराती, तब वह लज्जित, शंकित और पराजित होकर व्यथित हृदयसे वहाँसे चली जाती। दयार्द्र तारापद उसे बुलाकर कहता—सोना; आज सन्ध्या समय मैं तुम्हारे घर आऊँगा। चारु नागिनकी तरह फुफकारकर गरज बैठती—हाँ, हाँ, जाओगे क्यों नहीं !

पढ़ो लिखोगे कुछ नहीं न? अच्छा देखो, आज मास्टर साहबसे कहूँगी।

चारुके इस शासनसे तारापद कुछ भी भयभीत नहीं होता और वह दो एक दिन सन्ध्याके समय उस ब्राह्मणीके घर गया भी। तीसरी या चौथी बार तारापदपर चारु केवल बिगड़कर ही नहीं रह गई, बल्कि उसने एक बार धीरेसे तारापदकी कोठरीका दरवाजा बाहरसे बन्द करके सिकड़ी लगा दी और माँके बक्समेंसे ताली ताला लाकर उसे बाहरसे बन्द भी कर दिया। सन्ध्या तक तारापदको इस प्रकार तालेमें बन्द रखकर भोजनके समय उसने द्वार खोल दिया। तारापदको क्रोध तो आया, पर उसने कुछ कहा नहीं; और वह बिना भोजन किये ही वहाँसे चलनेका उपक्रम करने लगा। उस समय वह अनुतप्तहृदय और व्याकुल बालिका हाथ जोड़कर बहुत ही विनयपूर्वक बार बार कहने लगी—मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब कभी ऐसा काम नहीं करूँगी। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम खाकर जाओ। लेकिन जब इतने पर भी तारापदने नहीं माना, तब वह अधीर होकर रोने लगी। लाचार होकर तारापद लौट आया और भोजन करने लगा।

चारुने कई बार बहुत ही दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा की कि मैं अब तारापदके साथ सद्व्यवहार किया करूँगी और कभी क्षण-भरके लिए भी उसे दुःखी न किया करूँगी। पर जब सोनामणि जैसी और भी दो-चार लड़कियाँ सामने आ जातीं, तब उसका मिजाज न जाने क्यों बिगड़ जाया करता और वह किसी भी प्रकारसे अपने आपको न सँभाल सकती। जब वह लगातार कई दिनों तक भल-मनसाहतका व्यवहार करती रहती, तब तारापद सतर्क हो जाता और किसी बहुत बड़े उपद्रवकी सम्भावना समझकर उसके लिए तैयार

हो रहता । कोई कह नहीं सकता था कि सहसा किस लिए और किस ओरसे आक्रमण होगा। इसके उपरान्त प्रबल आँधी आती; आँधीके उपरान्त प्रचुर अश्रु-जलकी वर्षा होती; और उसके उपरान्त स्निग्ध शान्ति आ विराजती।

६

इसी प्रकार प्रायः दो वर्ष बीत गये। इतने लम्बे समय तक तारापदको कभी कोई पकड़कर नहीं रख सका था। जान पड़ता है कि पढ़ने लिखनेमें उसका मन एक अपूर्व आकर्षणसे बद्ध हो चुका था। जान पड़ता है कि अवस्था बढ़नेके साथ ही साथ उसकी प्रकृतिमें भी परिवर्तन होना आरम्भ हो गया था, स्थायी रूपसे बैठकर संसारकी सुख-स्वच्छन्दताका भोग करनेकी ओर उसका मन लग गया था। जान पड़ता है, उसकी सहपाठिका बालिकाका हमेशाके उपद्रवोंसे चंचल रहनेवाला सौन्दर्य अलक्षित भावसे उसके हृदयपर अपना बन्धन दृढ़ कर रहा था।

उधर चारु भी अब ग्यारह बरससे ऊपरकी हो गई। मोती बाबूने ढूँढ़ ढाँढ़कर अपनी लड़कीके विवाहके लिए दो तीन अच्छे अच्छे वर देखे। और जब देखा कि कन्याके विवाहका समय समीप आ रहा है, तब उन्होंने उसका पढ़ना लिखना और बाहर आना जाना बन्द कर दिया। यह आकस्मिक अवरोध देखकर चारुने घरमें बहुत बड़ा बखेड़ा खड़ा कर दिया।

इसपर एक दिन अन्नपूर्णाने मोती बाबूको बुलाकर कहा—तुम वरके लिए इतनी अधिक चिन्ता और ढूँढ़ खोज क्यों कर रहे हो? तारापद तो बहुत अच्छा लड़का है और तुम्हारी लड़कीको भी वह पसन्द है।

अन्नपूर्णाकी यह बात सुनकर मोती बाबूने बहुत अधिक आश्चर्य

प्रकट किया। उन्होंने कहा—भला यह कैसे हो सकता है? तारापदके कुल-शीलका कुछ भी पता नहीं। मेरी एक ही एक लड़की ठहरी। मैं उसे किसी अच्छे घरमें देना चाहता हूँ।

एक दिन रायडाँगाके बाबूके यहाँसे कुछ लोग लड़कीको देखनेके लिए आये। चारुको कपड़े लत्ते पहनाकर बाहर लानेकी चेष्टा की गई; परन्तु वह जाकर अपने सोनेके कमरेमें दरवाजा बन्द करके चुपचाप बैठ गई, किसी प्रकार बाहर निकली ही नहीं! मोती बाबूने कमरेके बाहरसे बहुत अनुनय विनय करके डाँट डपटकर बाहर निकालना चाहा; पर फल कुछ भी नहीं हुआ। अन्तमें उन्हें बाहर आकर राय-डाँगेसे आये हुए आदमियोंसे झूठ बोलना पड़ा। उन्हें कहना पड़ा कि अचानक लड़कीकी तबीयत बहुत खराब हो गई है, इसलिए आज हम लड़की नहीं दिखला सकते। उन लोगोंने सोचा कि लड़कीमें शायद कोई दोष है; इसी लिए यह चालाकी खेली है और यह बहाना किया है।

तब मोती बाबू सोचने लगे कि तारापद देखने सुननेमें सभी बातोंमें बहुत अच्छा लड़का है। इसे मैं अपने घरमें भी रख सकूँगा। उस दशामें मुझे अपनी एक मात्र लड़की पराए घर न भेजनी पड़ेगी। उन्होंने यह भी सोचा कि इस अशान्त अबाध्य लड़कीकी यह उद्दण्डता हमारी स्नेहपूर्ण दृष्टिमें चाहे कितनी ही क्षम्य क्यों न जान पड़ती हो, पर ससुरालमें इसकी ये सब बातें कोई न सहेगा।

तब पति-पत्नीने बहुत कुछ सोच विचारकर तारापदके घर उसके कुलके सम्बन्धकी सब बातोंका पता लगानेके लिए एक आदमी भेजा। वहाँसे समाचार आया कि वंश तो अच्छा है, पर गरीब है। तब मोती बाबूने लड़केकी माँ और भाइयोंके पास विवाहका प्रस्ताव भेजा।

उन्होंने बहुत ही प्रसन्न होकर सम्मति देनेमें क्षण-भरका भी विलम्ब नहीं किया।

अब मोती बाबू और अन्नपूर्णा दोनों मिलकर यह सोचने लगे कि विवाह कब हो। परन्तु मोती बाबू स्वभावसे ही गोपनताप्रिय और सावधान रहनेवाले आदमी थे। उन्होंने सब बातें बहुत ही गुप्त रक्खीं।

चारु किसी प्रकार रोककर रक्खी ही नहीं जा सकती थी। वह बीच बीचमें मराठोंकी घुड़सवार सेनाकी तरह तारापदके पढ़नेके कमरेमें जा पहुँचती। वह कभी राग, कभी अनुराग और कभी विराग-द्वारा उसकी पाठचर्याकी एकान्त शान्ति सहसा भंग कर दिया करती। इसी लिए आजकल इस निर्लिप्त और मुक्तस्वभाव ब्राह्मण बालकके चित्तमें बीच बीचमें क्षण-भरके लिए विद्युत्के स्पन्दनकी भाँति एक अपूर्व चंचलताका संचार हो जाया करता। जिस व्यक्तिका लघु-भार चित्त सदा अटूट अव्याहत भावसे काल-स्रोतकी तरंगोंमें उतराता हुआ केवल सामनेकी ओर ही बहा चला जाता था, वह आजकल रह रहकर अन्यमनस्क हो उठता और विचित्र दिवा-स्वप्नके जालमें जकड़ जाता। वह दिन दिन भर पढ़ना लिखना छोड़कर मोती बाबूकी लाइब्रेरीमें पहुँचकर तसवीरोंवाली पुस्तकोंके पन्ने उलटा करता। उन चित्रोंके संयोगसे जिस कल्पित जगतकी सृष्टि होती, वह उसके पहलेवाले जगतसे बिलकुल अलग और रंगीन होता। चारुका अद्भुत आचरण देखकर अब वह पहलेकी तरह हँस नहीं सकता। वह जब कभी किसी प्रकारकी दुष्टता करती, तब उसे मारने पीटनेका विचार अब उसके मनमें उठता ही नहीं। अपना यह निगूढ परिवर्तन और आबद्ध आसक्त भाव उसे एक नवीन स्वप्नके समान जान पड़ने लगा।

श्रावण मासमें विवाहके लिए एक शुभ दिन स्थिर करके बाबू मोतीलालने तारापदकी माता और भाइयोंको लानेके लिए आदमी भेजा, पर तारापदको इस बातकी कोई खबर न होने दी। अपने कलकत्तेवाले गुमाश्तेको उन्होंने बढ़िया बाजों आदिका बयाना देनेका आदेश लिख भेजा और साथ ही दूसरी अनेक आवश्यक चीजोंकी फेहिरिस्त भी तैयार करके भेज दी।

आकाशमें नवीन वर्षाके बादल उठे। गाँवकी नदी इतने दिनोंमें प्रायः बिलकुल सूख गई थी। बीच बीचमें कहीं कहीं किसी कुण्ड या गड्ढेमें पानी दिखलाई देता था। छोटी छोटी नावें उसी कीचड़-भरे पानीमें पड़ी हुई थीं; और जिस स्थानपर नदीका पाट बिलकुल सूख गया था, उस स्थानपर बैलगाड़ियों आदिके आने जानेसे पहियोंके कारण गहरी लकीरें पड़ गई थीं। ऐसे समयमें एक दिन पितृगृहसे लौटकर आनेवाली पार्वतीके समान कहींसे द्रुतगामिनी जलधारा कलकलहास्य करती हुई गाँवके शून्य वक्षपर आ पहुँची। नंगे बालक और बालिकाएँ नदी-तटपर आ-आकर जोर जोरसे चिल्लाते हुए नाचने लगे। वे सब अतृप्त आनन्दसे बार बार जलमें कूदकर नदीको मानो आलिंगन करते हुए तैरने लगे। कुटीरोंमें रहनेवाली स्त्रियाँ अपनी परिचित संगिनीको देखनेके लिए बाहर निकल आईं। मानो शुष्क और निर्जीव ग्राममें न जाने कहाँसे प्राणकी एक विपुल तरंगने आकर प्रवेश किया। बोझसे लदी हुई छोटी बड़ी अनेक नावें देश विदेशसे आने लगीं। सन्ध्या समय घाटपर विदेशी मल्लाहोंके संगीतकी ध्वनि उठने लगी। नदीके दोनों तटोंकी गाँवरूपी कन्याएँ साल-भर अपने एकान्त कोनोंमें अपनी छोटी-सी गृहस्थी लेकर अकेली दिन बिताया करती हैं। वर्षाके समय बाहरकी विशाल पृथ्वी अनेक प्रकारके विचित्र पण्यरूपी उपहार लेकर और गैरिक रंगके जलरथ-पर चढ़कर इन ग्राम-कन्याओंकी खबर लेनेके

लिए आती है। उस समय जगतके साथ इनकी जो आत्मीयता हो जाती है, उसके गर्वसे कुछ दिनोंके लिए इनकी क्षुद्रता मानो नष्ट हो जाती है। सभी मानो सचल, सजग और सजीव हो उठती हैं और मौन-निस्तब्ध देशमें सुदूरके राज्योंकी कलालाप ध्वनि आकर चारों ओरके आकाशको आन्दोलित कर देती है।

इसी समय कुडुलकाँटाके नाग बाबूके इलाकेमें रथ-यात्राका प्रसिद्ध मेला था। चाँदनीवाली सन्ध्यामें तारापदने घाटपर जाकर देखा कि कोई नाव हिंडोला या चरखी लिए, कोई बिक्रीका सौदा सुलुफ लिये प्रबल नवीन स्रोतोंमें होती हुई मेलेकी ओर जा रही है। कलकत्तेके कन्सर्ट दलने जोर जोरसे अपने बाजे बजाने आरम्भ कर दिये हैं। रास-धारी हारमोनियम और बेला बजाकर गीत गा रहे हैं और सम आने पर हा हा करते हुए चिल्ला उठते हैं। पश्चिमकी नावोंके मल्लाह केवल ढोल और करताल लेकर ही उन्मत्त उत्साहसे बिना संगीतके ही चिल्ला कर आकाश गुँजा रहे हैं। उनके उद्दीपनकी कोई सीमा ही नहीं है। देखते देखते पूर्व दिशासे घने बादल काले पाल उड़ाते हुए आकाशके मध्यमें आ पहुँचे। चन्द्रमा उन बादलोंमें छिप गया। पुरवा हवा जोरोंसे बहने लगी। बादलके पीछे बादल बढ़ते हुए चलने लगे। नदीतटकी हिलती हुई वन-श्रेणीमें घोर अन्धकार छा गया। मेंढक बोलने लगे। झिल्लियोंकी ध्वनि मानो करोंतसे उस अन्धकारको चीरने लगी। सामने आज मानो सारे जगतकी रथयात्रा थी। चक्र घूम रहे थे, ध्वजाएँ उड़ रही थीं, पृथ्वी काँप रही थी, बादल मँड़रा रहे थे, हवा जोरोंसे चल रही थी, नदी बह रही थी, नावें चली जा रही थीं, संगीत हो रहा था। देखते देखते बादल जोरोंसे गरजने लगे। बिजली आकाशको काट-काटकर चमकने लगी। बहुत दूरसे अन्धकारमेंसे मूसलधार वृष्टि होनेकी सूचना मिलने लगी। केवल नदीके एक तटपर एक कोनेमें पड़ा हुआ

काँठाल गाँव अपनी कुटीका द्वार बन्द करके और दीपक बुझाकर चुपचाप सोने लगा।

दूसरे दिन तारापदकी माता और सब भाई आकर काँठालमें नाव परसे उतरे। उसके दूसरे दिन अनेक प्रकारकी सामग्रीसे लदी हुई तीन नावें भी कलकत्तेसे आकर काँठालके जमींदारकी छावनीके सामने घाट पर आ लगीं। इसके तीसरे दिन बहुत सबेरे सोनामणि एक कागजपर कुछ आम्रसत्व (सुखाया हुआ आमका रस) और दोनेमें थोड़ा-सा अचार लिये हुए डरती डरती तारापदके पढ़नेके कमरेके दरवाजेपर चुपचाप आकर खड़ी हो गई। पर उस दिन तारापद कहीं किसीको दिखलाई नहीं दिया। इससे पहले ही कि स्नेह, प्रेम और बन्धुत्वके षड्यन्त्रका बन्धन उसे चारों ओरसे पूरी तरहसे घेर लेता, समस्त गाँवका हृदय चुराकर वर्षाऋतुकी अँधेरी रातमें वह ब्राह्मण बालक आसक्ति-विहीन और उदासीन जननी विश्वपृथ्वीके पास चला गया।

अध्यापक

१

कालिजमें अपने सहपाठियोंमें मेरा कुछ विशेष सम्मान था। सभी लोग सभी विषयोंमें मुझे कुछ अधिक समझदार समझा करते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि चाहे सही हो और चाहे गलत, पर सभी विषयोंमें मेरा कुछ न कुछ मत हुआ करता था। अधिकांश लोग ऐसे ही होते हैं जो किसी विषयमें जोर देकर हाँ या नहीं नहीं कह सकते। पर मैं हाँ या नहीं करना बहुत अच्छी तरह जानता था।

केवल यही बात नहीं थी कि प्रत्येक विषयमें मेरी कुछ न कुछ सम्मति या असम्मति हुआ करती थी; बल्कि मैं स्वयं कुछ रचना भी किया करता था; वक्तृता दिया करता था; कविता लिखा करता

था; समालोचना करता था ; और सब प्रकारसे अपने सहपाठियोंकी ईर्ष्या और श्रद्धाका पात्र हो गया था।

मैं इसी प्रकार अन्ततक अपनी महिमा बनाये रखकर कालिजसे बाहर निकल सकता था। परन्तु इसी बीचमें मेरे ख्यातिस्थान-का शनि एक नये अध्यापककी मूर्ति धारण करके कालिजमें उदित हो गया।

हम लोगोंके उस समयके वे नये अध्यापक आजकलके एक बहुत प्रसिद्ध आदमी हैं। इसलिए यदि मैं अपने इस जीवन-वृत्तान्तमें उनका नाम छिपा भी रक्खूँ तो उनके उज्ज्वल नामकी कोई विशेष क्षति न होगी। मेरे प्रति उनका जो कुछ आचरण था उसका ध्यान रखते हुए इस इतिहासमें उनका नाम वामाचरण बाबू रहेगा।

उनकी अवस्था हम लोगोंकी अवस्थासे कुछ बहुत अधिक नहीं थी। अभी थोड़े ही दिन हुए, वे एम० ए० की परीक्षामें प्रथम हुए थे; और टानी साहबसे विशेष प्रशंसा प्राप्त करके कालिजसे बाहर निकले थे। परन्तु वे ब्रह्मसमाजी थे; इसलिए हम लोगोंसे बिलकुल अलग और स्वतंत्र रहते थे। वे हम लोगोंके समकालीन और समवयस्क नहीं जान पड़ते थे। हम सब हिन्दू नवयुवक आपसमें उन्हें ब्रह्म-दैत्य कहा करते थे।

हम लोगोंकी एक सभा थी, जिसमें हम सब मिलकर किसी विषयपर तर्क-वितर्क और वाद-विवाद किया करते थे। उस सभाका मैं ही विक्रमादित्य था और मैं ही नवरत्न था। सब मिलाकर हम छत्तीस आदमी उस सभाके सभ्य थे। यदि इनमेंसे पैंतीस आदमियोंको गिनतीमें न भी लिया जाता, तो भी कोई विशेष हानि नहीं थी। और इस एक बचे हुए आदमीकी योग्यताके सम्बन्धमें जो कुछ मेरी धारणा थी, वही धारणा शेष पैंतीस आदमियोंकी भी थी।

इस सभाके वार्षिक अधिवेशनके लिए मैंने एक ओजस्वी प्रबन्ध तैयार किया था, जिसमें कार्लाइलकी रचनाकी समालोचना थी। मेरे मनमें इस बातका दृढ़ विश्वास था कि उसकी असाधारणता देखकर सभी श्रोता चमत्कृत और चकित हो जायँगे। कारण यह था कि मैंने अपने प्रबन्धमें आदिसे अन्त तक कार्लाइलकी निन्दा ही निन्दा की थी।

उस अधिवेशनके सभापति थे वही वामाचरण बाबू। जब मैं अपना प्रबन्ध पढ़ चुका, तब मेरे सहपाठी भक्त लोग मेरे मतकी असमसाहसिकता और अँगरेजी भाषाकी विशुद्ध तेजस्वितासे विमुग्ध हो गये और निरुत्तर होकर चुपचाप बैठे रहे। जब वामाचरण बाबूने जान लिया कि किसीको कुछ भी वक्तव्य नहीं है, तब उन्होंने उठकर शान्त गम्भीर स्वरसे संक्षेपमें सब लोगोंको यह बात समझा दी कि अमेरिकाके सुविख्यात सुलेखक लावेल साहबके प्रबन्धसे जो अंश चुराकर मैंने अपने प्रबन्धमें रक्खा है, वह बहुत ही चमत्कारपूर्ण है; और जो अंश मेरा बिलकुल अपना ही है, वह अंश यदि मैं छोड़ देता, तो बहुत अच्छा होता।

यदि वे यह कहते कि नवीन प्रबन्ध-लेखकका मत और यहाँ तक कि भाषा भी लावेल साहबके मत और भाषासे बहुत अधिक मिलती जुलती है, तो उनकी यह बात ठीक भी होती और अप्रिय भी न होती। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

इस घटनाके उपरान्त मेरे प्रति सहपाठियोंका जो अखंड विश्वास था, उसमें एक विदारण रेखा पड़ गई। केवल मेरे पुराने अनुरक्त और भक्तोंमें अग्रगण्य अमूल्यचरणके हृदयमें लेशमात्र भी विकार उत्पन्न न हुआ। वह मुझसे बार बार कहने लगा कि तुम अपना वह 'विद्यापति

नाटक' तो ब्रह्म-दैत्यको सुना दो। देखें, उसके सम्बन्धमें वह निन्दक क्या कहता है।

राजा शिवसिंहकी महिषी लछिमा देवीको कवि विद्यापति बहुत चाहते थे और उसे देखे बिना वे कविता नहीं कर सकते थे। इसी मर्मका अवलम्बन करके मैंने एक परम शोकावह और बहुत ही उच्च श्रेणीका पद्य-नाटक लिखा था। मेरे श्रोताओंमेंसे जो लोग पुरातत्त्वकी मर्यादा लंघन करना नहीं चाहते थे, वे कहा करते थे कि इतिहासमें ऐसी कोई घटना हुई ही नहीं। मैं कहा करता था कि यह इतिहासका दुर्भाग्य है। यदि सचमुच ऐसी घटना हुई होती, तो इतिहास बहुत अधिक सरस और सत्य हो जाता।

यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि उक्त नाटक उच्चश्रेणीका था; परन्तु अमूल्य कहा करता कि नहीं, वह सर्वोच्च श्रेणीका है। मैं अपने आपको जैसा समझता था, वह मुझे उससे भी कुछ और अधिक समझा करता था। इसलिए उसके चित्त-पटपर मेरा जो विराट् रूप प्रतिफलित था, मैं भी उसकी इयत्ता नहीं कर सकता था।

उसने वामाचरण बाबूको नाटक सुनानेका जो परामर्श दिया था, वह मुझे भी बुरा नहीं लगा। क्योंकि मेरा यह बहुत ही दृढ़ विश्वास था कि उस नाटकमें निन्दा करने योग्य नामको भी कोई छिद्र नहीं है। इसलिए फिर एक दिन हम लोगोंकी तर्क-सभाका विशेष अधिवेशन किया गया और उस अधिवेशनमें मैंने छात्रोंके सामने अपना नाटक पढ़ सुनाया और वामाचरण बाबूने उसकी समालोचना की।

उस समालोचनाको मैं विस्तारपूर्वक यहाँ नहीं लिखना चाहता। सारांश यह है कि वह मेरे अनुकूल नहीं थी। वामाचरण बाबूने कहा कि नाटकगत पात्रोंके चरित्रों और मनोभावोंको निर्दिष्ट विशेषता नहीं प्राप्त हुई। उसमें साधारण भावोंकी बड़ी बड़ी बातें हैं; पर वे सब

वाष्पके समान अनिश्चित हैं। वे लेखकके हृदयमें आकर और जीवन प्राप्त करके सृजित नहीं हुई हैं।

बिच्छूकी दुममें ही डंक होता है। वामाचरण बाबूकी समालोचना-के उपसंहारमें ही तीव्रतम विष संचित था। बैठनेसे पहले उन्होंने कहा—इस नाटकके बहुतसे दृश्य और मूल भाव गेटे-रचित 'टासो' नाटकका अनुकरण हैं; यहाँ तक कि अनेक स्थानोंमें तो केवल अनु-वाद ही करके रख दिया गया है।

इस बातका एक बहुत अच्छा उत्तर था। मैं कह सकता था कि अनुकरण हुआ करे, यह कोई निन्दाकी बात नहीं है। साहित्य-राज्यमें चोरीकी विद्या बहुत बड़ी विद्या है। यहाँ तक कि यदि आदमी पकड़ भी लिया जाय, तो भी वह भारी विद्या है। साहित्य-क्षेत्रमें काम करने-वाले बहुतसे बड़े बड़े आदमी सदासे इस प्रकारकी चोरी करते आये हैं। यहाँ तक कि शेक्सपियर भी इससे नहीं बचे हैं। साहित्य-क्षेत्रमें जो लोग सबसे अधिक मौलिक लेखक कहलाते हैं, वही चोरी करनेका भी साहस कर सकते हैं। और इसका कारण यही है कि वे दूसरोंकी चीजें बिलकुल अपनी बना सकते हैं।

इस प्रकारकी और भी कई अच्छी अच्छी बातें थीं; पर उस दिन मैंने कुछ भी नहीं कहा। इसका यह कारण नहीं था कि मुझमें उस समय विनय आ गई थी। असल बात यह है कि उस दिन मुझे इन सबमेंसे एक भी बात याद नहीं आई। प्रायः पाँच सात दिन बाद एक एक करके ये सब उत्तर दैवागत ब्रह्मास्त्रकी भाँति मेरे मनमें उदित होने लगे। लेकिन उस समय शत्रु मेरे सामने नहीं था; इसलिए वे अस्त्र उलटे मुझको ही बेधने लगे। मैं सोचने लगा कि ये बातें कमसे कम अपने क्लासके छात्रोंको तो अवश्य बतला दूँ। परन्तु ये सब उत्तर मेरे सहपाठी गधोंकी बुद्धिके लिए बहुत ही सूक्ष्म थे। वे तो केवल यही

समझते थे कि चोरी आखिर चोरी ही है। मेरी चोरी और दूसरोंकी चोरीमें कितना अन्तर है, यह समझनेकी शक्ति यदि उन लोगोंमें होती, तो मुझमें और उनमें कुछ विशेष अन्तर न रह जाता।

मैंने बी० ए० की परीक्षा दी। मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं था कि मैं परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाऊँगा। परन्तु मनमें कुछ आनन्द नहीं रहा। वामाचरणकी इन कई बातोंके आघातसे मेरी ख्याति और आशाका गगनभेदी मन्दिर बिलकुल ढह गया। हाँ, अबोध अमूल्यचरणके मनमें मेरे प्रति जो श्रद्धा थी, केवल उसमें ही कोई कमी नहीं हुई। प्रभातके समय जब यशःसूर्य मेरे सन्मुख उदित हुआ था, तब भी वह श्रद्धा बहुत लम्बी छायाकी भाँति मेरे पैरोंके साथ साथ लगी चलती थी और अब सन्ध्या समय जब मेरा यशःसूर्य अस्त होने लगा, तब भी वह उसी प्रकार दीर्घ और विस्तृत होकर मेरे पैरोंके साथ ही साथ लगी फिरती थी—उनका परित्याग नहीं करती थी। पर इस श्रद्धामें कोई परितृप्ति नहीं थी। यह शून्य छायामात्र थी। यह मूढ़ भक्त-हृदयका मोहान्धकार था—बुद्धिका उज्ज्वल रश्मिपात नहीं था।

२

पिताजीने मेरा विवाह कर देनेके लिए मुझे देशसे बुला भेजा। मैंने उनसे विवाहके लिए और कुछ दिनोंका समय माँगा।

वामाचरण बाबूने मेरी जो समालोचना की थी, उसके कारण स्वयं मेरे ही मनमें एक प्रकारका आत्म-विरोध—अपने ही प्रति अपना एक विद्रोहभाव—उत्पन्न हो गया था। मेरा समालोचक अंश गुप्त रूपसे मेरे लेखक अंशपर आघात किया करता था। मेरा लेखक अंश कहता था कि मैं इसका बदला लूँगा। मैं फिर एक बार लिखूँगा और तब देखूँगा कि मैं बड़ा हूँ या मेरा समालोचक बड़ा है।

मैंने मन ही मन स्थिर किया कि विश्व-प्रेम, दूसरोंके लिए आत्म-विसर्जन और शत्रुको क्षमा करनेका भाव लेकर, चाहे गद्यमें हो और चाहे पद्यमें, बहुत ही सूक्ष्म भावोंसे पूर्ण कुछ लिखूँगा और समालोचकोंके लिए एक बहुत बड़ी समालोचनाकी खुराक जुटाऊँगा।

मैंने स्थिर किया कि एक सुन्दर निर्जन स्थानमें बैठकर मैं अपने जीवनकी इस सर्वप्रधान कीर्त्तिकी सृष्टिका कार्य सम्पन्न करूँगा। मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि कमसे कम एक मास तक मैं अपने किसी बन्धु-बान्धव या परिचित-अपरिचितके साथ भेंटतक न करूँगा।

मैंने अमूल्यको बुलाकर अपना यह सब विचार बतलाया। वह बिलकुल स्तम्भित हो गया—मानो उसने उसी समय मेरे ललाटपर स्वदेशकी समीपवर्तिनी भावी महिमाकी प्रथम अरुण ज्योति देख ली। उसने बहुत ही गम्भीर भावसे मेरा हाथ पकड़कर जोरसे दबा लिया और आँखें फाड़ फाड़कर मेरे मुँहकी ओर देखते हुए कोमल स्वरमें कहा—हाँ भाई, तुम जाओ और अमर कीर्ति, अक्षय गौरव उपार्जित करके आओ।

मेरे शरीरमें रोमांच हो आया। मुझे ऐसा जान पड़ा कि भावी गौरवसे गर्वित और भक्तिसे विह्वल मेरे देशका प्रतिनिधि बनकर ही अमूल्य मुझसे ये सब बातें कह रहा है।

अमूल्यने भी कुछ कम त्याग नहीं स्वीकृत किया। उसने स्वदेशके हितके विचारसे सुदीर्घ पूरे एक मास तक मेरे संग साथकी प्रत्याशा पूर्ण रूपसे विसर्जित कर दी। गम्भीर दीर्घ निश्वास लेकर मेरा मित्र ट्रामपर चढ़कर कार्नवालिस स्ट्रीटवाले अपने निवासस्थानकी ओर चला गया; और मैं अपने गंगा-किनारेके फरासडाँगेवाले बागमें अमर कीर्ति तथा अक्षय गौरव उपार्जित करनेके लिए आ रहा।

गंगाके तटपर एक निर्जन कमरेमें मैं चित्त होकर लेट जाता, दोपहरके समय विश्व-प्रेमकी बातें सोचता सोचता गहरी नींदमें सो जाता ; और एकदम अपराह्नको पाँच बजे जाग उठता । उसके उपरान्त शरीर और मन कुछ शिथिल हो जाया करता । किसी प्रकार अपना चित्त बहलाने और समय बितानेके लिए मैं बागके पिछ-वाड़ेवाला सड़कके किनारे लकड़ीकी एक बेंचपर चुपचाप बैठकर बैल-गाड़ियों और आते जाते लोगोंको देखा करता । जब बहुत ही असह्य हो जाता, तब स्टेशन चला जाता । वहाँ टेलिग्राफका काँटा कट कट शब्द किया करता ; टिकटके लिए घंटा बजा करता ; बहुतसे लोग आकर एकत्र हो जाते । तब वह हजार पैरोंवाला और लाल लाल आँखों-वाला लोहेका सरीसृप फुफकारता हुआ आया करता और जोर जोरसे चिल्लाकर चल दिया करता । आदमियोंकी धकापेल होती । मुझे थोड़ी देरके लिए कुछ कौतुक-सा जान पड़ता । लौटकर घर चला आता और भोजन करता । कोई संगी साथी तो था ही नहीं, इसलिए फिर जल्दी ही सो जाया करता । उधर सबेरे उठनेकी भी कोई जल्दी नहीं रहती ; इसलिए प्रायः आठ नौ बजे तक बिछौनेपर ही पड़ा रहा करता ।

शरीर मिट्टी हो गया ; परन्तु ढूँढ़ने पर भी विश्व-प्रेमका कोई पता ठिकाना नहीं मिला । कभी अकेला रहा नहीं था, इसलिए बिना संगी साथीके गंगाका किनारा भी शून्य श्मशानके समान जान पड़ने लगा । अमूल्य भी ऐसा गधा निकला कि उसने एक दिनके लिए भी कभी अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी ।

इससे पहले जब मैं कलकत्तेमें रहता था, तब सोचा करता था कि मैं वट-वृक्षकी विपुल छायामें पैर पसारकर बैठा करूँगा । मेरे पैरोंके पाससे होकर कलनादिनी स्रोतस्विनी अपने इच्छानुसार बहा करेगी । बीचमें

यह स्वप्नाविष्ट कवि होगा और चारों ओर भावोंका राज्य तथा बहिः-प्रकृति होगी। काननमें पुष्प होंगे; शाखाओंपर पक्षी होंगे; आकाशमें तारे होंगे; मनमें विश्वजनीन प्रेम होगा; और लेखनीके मुखसे अश्रान्त अजस्र भावोंका स्रोत विचित्र छन्दोंमें प्रवाहित हुआ करेगा। परन्तु अब कहाँ प्रकृति और कहाँ प्रकृतिका कवि, कहाँ विश्व और कहाँ विश्वप्रेमिक, एक दिनके लिए भी मैं बागसे बाहर नहीं निकला। काननके फूल काननमें ही खिलते; आकाशके तारे आकाशमें ही उगते; वट वृक्षकी छाया उसके नीचे ही रहती; और घरका दुलारा मैं घरमें ही पड़ा रहा करता।

जब मेरा क्रोध और क्षोभ किसी प्रकार अपना माहात्म्य प्रमाणित न कर सका, तब वामाचरणके प्रति वह और भी अधिकाधिक बढ़ने लगा।

उस समय देशके शिक्षित समाजमें बाल्यविवाहके सम्बन्धमें वाग्युद्ध छिड़ा हुआ था। वामाचरण बाल्यविवाहके विरुद्ध पक्षमें थे। उसी समय मैंने लोगोंसे यह भी सुना कि वे एक युवती कुमारीके प्रेम-पाशमें बँधे हुए हैं और शीघ्र ही परिणय-पाशमें बद्ध होनेकी प्रत्याशा कर रहे हैं।

मुझे यह विषय बहुत ही कौतुकजनक जान पड़ता; और उधर विश्वप्रेमका महाकाव्य भी किसी प्रकार मेरे हाथ न लगता। इस-लिए मैंने बैठे-बैठे वामाचरणको तो नायक बनाया और कदम्बकली मजू-मदार नामकी एक कल्पित नायिका खड़ी करके एक बहुत तीव्र प्रहसन लिख डाला। जब मेरी लेखनी यह अमर कीर्त्ति प्रसव कर चुकी, तब मैं कलकत्ते लौट चलनेका उद्योग करने लगा। परन्तु इसी समय एक बाधा आ पड़ी।

३

एक दिन तीसरे पहर कुछ आलस्य आ गया था; इसलिए मैं स्टेशन नहीं गया और बागमें बने हुए मकानोंके कमरे आदि ही देखने लगा। कोई आवश्यकता नहीं पड़ी थी, इसलिए इससे पहले मैं इनमेंसे अधिकांश कमरोंमें कभी गया भी नहीं था। बाह्य वस्तुओंके सम्बन्धमें मुझमें लेश मात्र भी कुतूहल या अभिनिवेश नहीं था। उस दिन केवल समय बितानेके उद्देश्यसे ही मैं उसी प्रकार इधर उधर घूम रहा था, जिस प्रकार हवाके झोंकेसे गिरे हुए पत्ते इधर उधर उड़ा करते हैं।

उत्तर ओरके कमरेका दरवाजा खोलते ही मैं एक छोटे बरामदेमें जा पहुँचा। बरामदेके सामने ही बागके उत्तरकी सीमाकी दीवारसे सटे हुए जामुनके दो वृक्ष आमने सामने खड़े हुए थे। उन्हीं दोनों वृक्षोंके बीचसे एक दूसरे बागकी लम्बी बकुल-वीथीका कुछ अंश दिखाई पड़ता था।

परन्तु इन सब बातोंपर मेरा ध्यान बादमें गया। उस समय तो मुझे और कुछ देखनेका अवसर ही नहीं मिला। उस समय मैंने केवल यही देखा कि प्रायः सोलह वर्षकी एक युवती हाथमें एक पुस्तक लिये हुए है और सिर झुकाए टहलती हुई कुछ पढ़ रही है।

यद्यपि उस समय किसी प्रकारकी तत्त्वालोचना करनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी, पर कुछ दिनोंके उपरान्त मैंने सोचा कि जब दुष्यन्त बड़े बड़े बाण और शरासन लेकर और रथपर चढ़कर आखेट करनेके लिए वनमें गया था, तब उसके हाथसे कोई मृग तो नहीं मरा था; परन्तु हाँ, बीचमें दैवात् दस मिनट तक एक वृक्षकी आड़में खड़े होकर उसने जो कुछ देखा और सुना, वही उसके समस्त जीवनकी देखी और सुनी हुई बातोंसे बढ़ गया। मैं भी पेन्सिल, कलम और कागज लेकर काव्य-मृगयाके लिए बाहर निकला था। बेचारा विश्व-प्रेम तो भागकर

बच गया ; और जो कुछ देखना था, वह मैंने जामुनके उन दो वृक्षोंकी आड़में खड़े होकर देख लिया। मनुष्यके जीवनमें इस प्रकारका दृश्य केवल एक ही बार दिखाई देता है ; दोबारा नहीं दिखाई देता।

मैंने संसारमें आकर बहुत-सी चीजें नहीं देखी थीं। आज तक मैं कभी जहाजपर नहीं चढ़ा था, कभी बेलूनपर भी नहीं चढ़ा था। कोयलेकी खानमें भी कभी नहीं उतरा था। परन्तु स्वयं अपने मानसी आदर्शके सम्बन्धमें अब तक जो मैं बिलकुल भ्रान्त और अनभिज्ञ था, उसका इस उत्तर ओरवाले बरामदेमें आनेसे पहले कभी मुझे सन्देह भी नहीं हुआ था। मेरी अवस्था इक्कीस वर्षसे ऊपर हो चुकी है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि इससे पहले मैंने अपने अन्तःकरणमें कल्पनाके बलसे स्त्रियोंके सौन्दर्यकी एक ध्यान-मूर्त्तिका सृजन नहीं किया था—उस मूर्त्तिको मैंने अनेक वेश-भूषाओंसे सज्जित और अनेक अवस्थाओंके मध्यमें स्थापित किया था ; परन्तु हाँ, कभी स्वप्नमें भी इस बातकी आशा नहीं की थी कि उसके पैरोंमें जूते, शरीरपर कोट और हाथमें पुस्तक देखूँगा। इस प्रकारका वेश देखनेकी मैंने कभी इच्छा भी नहीं की थी। परन्तु मेरी लक्ष्मीने फाल्गुन मासके अन्तमें, तीसरे पहरके समय, बड़े बड़े वृक्षोंके हिलते हुए घने पत्तोंके वितानके नीचे, दूर तक फैली हुई छाया और प्रकाशकी रेखासे अंकित पुष्पवनके पथमें, पैरोंमें जूते और शरीरपर कोट पहनकर, हाथमें पुस्तक लिये हुए जामुनके दो वृक्षोंकी आड़से अकस्मात् मुझे दर्शन दिए। मैंने कोई बात नहीं कही।

दो मिनटसे अधिक और दर्शन नहीं हुए। मैंने अनेक छिद्रोंमेंसे देखनेकी अनेक चेष्टाएँ कीं, पर कुछ भी फल न हुआ। उसी दिन सन्ध्यासे कुछ पहले मैं वट वृक्षके नीचे पैर पसारकर बैठा। मेरी आँखोंके सामने उस पारके घने वृक्षोंकी श्रेणीके ऊपर सन्ध्या-तारा प्रशान्त स्मितहास्य करता हुआ उदित हुआ ; और देखते देखते

सन्ध्याश्री अपने नाथहीन विपुल निर्जन वासरगृहका* द्वार खोलकर चुपचाप खड़ी हो गई।

मैंने उसके हाथमें जो पुस्तक देखी, वह मेरे लिए एक नवीन रहस्यका निकेतन हो गई। मैं सोचने लगा कि वह कौन-सी पुस्तक थी? उपन्यास था या काव्य? उसमें किस प्रकारकी बातें थीं? उस समय उस पुस्तकका जो पृष्ठ खुला हुआ था और जिसपर वह तीसरे पहरकी छाया और सूर्यकी किरणें, उस वकुल वनके पत्तोंकी मरमराहट और दोनों आँखोंकी औत्सुक्यपूर्ण स्थिर दृष्टि पड़ रही थी, उस पृष्ठमें कथाका कौन-सा अंश, काव्यका कौन-सा रस प्रकाशित हो रहा था? साथ ही मैं यह भी सोचने लगा कि उन घने खुले हुए बालोंकी अन्धकारपूर्ण छायाके नीचे, सुकुमार ललाट-मंडपके अन्दर, विचित्र भावोंका आवेश किस प्रकार अपनी लीला दिखला रहा था। उस कुमारी हृदयकी निभृत निर्जनतापर नई नई काव्य-माया कैसे अपूर्व सौन्दर्यके आलोकका सृजन कर रही थी। इस समय मेरे लिए स्पष्ट शब्दोंमें यह प्रकट करना असम्भव है कि उस आधी रात तक मैं इस प्रकारकी कितनी और क्या क्या बातें सोचता रहा।

पर आखिर मुझसे यह किसने कहा कि वह कुमारी ही थी? मैंने समझ लिया कि मुझसे बहुत पहले होनेवाले प्रेमी दुष्यन्तको जिसने शकुन्तलाका परिचय होनेसे पहले ही उसके सम्बन्धमें आश्वासन दिया था, उसीने मुझे भी यह बतलाया कि वह कुमारी है। वह मनकी वासना थी। वह मनुष्यको सच्ची झूठी बहुत-सी बातें बतलाया करती है। उनमेंसे कोई बात ठीक उतरती है और कोई बात ठीक नहीं उतरती। दुष्यन्तसे और मुझसे जो बात कही गई थी, वह ठीक थी।

* जिस घरमें वर-वधूका प्रथम शयन होता है।

मेरे लिए इस बातका पता लगाना कुछ भी कठिन नहीं था कि मेरी वह अपरिचित पड़ोसिन विवाहिता है या कुमारी, ब्राह्मण है या शूद्र। पर मैंने इस बातका पता नहीं लगाया। मैंने केवल नीरव चकोरके समान हजारों योजनकी दूरीसे अपने चन्द्र-मंडलको घेर घेर कर ऊँचा मुँह किये देखनेकी चेष्टा की।

दूसरे दिन दोपहरके समय एक छोटी नाव किराए करके किनारेकी ओर देखता हुआ मैं ज्वारमें बह चला। मल्लाहोंको मैंने मना कर दिया कि वे डाँड़ न चलावें, नाव खेई न जाय।

मेरी शकुन्तलाकी तपोवनवाली कुटी गंगाके किनारे ही थी। वह कुटी बिलकुल कण्वकी कुटीके समान नहीं थी। गंगासे घाटकी सीढ़ियाँ ऊपरके विशाल भवनके बरामदे तक चली गई थीं और वह बरामदा काठकी ढालू छतसे छाया हुआ था।

जिस समय मेरी नाव चुपचाप बहती हुई घाटके सामने पहुँची, उस समय मैंने देखा कि मेरी नवयुगवाली शकुन्तला बरामदेमें जमीनपर बैठी हुई है। उसकी पीठकी ओर एक चौकी है, जिसपर कुछ किताबें रक्खी हुई हैं। उन्हीं पुस्तकोंके ऊपर उसके बाल स्तूपाकार खुले पड़े हैं। मेरी वह शकुन्तला चौकीके सहारे ऊपर मुँह किए हुए, उठे हुए बाएँ हाथपर सिर रक्खे बैठी है। नाव परसे उसका मुँह नहीं दिखाई देता है; केवल कोमल कंठकी एक सुकुमार वक्र रेखा दिखाई देती है। उसके खुले हुए दोनों पद-पल्लवोंमेंसे एक तो घाटके ऊपरकी सीढ़ीपर और दूसरा उसके नीचेकी सीढ़ीपर फैला हुआ है। साड़ीका काला किनारा कुछ तिरछा होकर उन दोनों पैरोंको घेरे हुए है। उसके मनोयोग-हीन शिथिल दाहिने हाथसे एक पुस्तक खिसककर जमीन पर आ पड़ी है। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानो वह मूर्त्तिमती मध्याह्न लक्ष्मी है। सहसा दिनके कार्यके मध्यमें एक निष्पन्द-

सुन्दरी अवकाश-प्रतिमा आकर बैठ गई है। पैरोंके नीचे गंगा है; सामने दूरका दूसरा किनारा और ऊपर तीव्र रूपसे तपता हुआ नीला आकाश है। ये सब अपनी उस अन्तरात्मारूपिणीकी ओर—उन्हीं दोनों खुले हुए पैरों, उसी अलसविन्यस्त बायें हाथ और उसी उत्क्षिप्त बंकिम कण्ठ-रेखाकी ओर—पूर्ण निस्तब्ध और एकाग्र होकर चुपचाप देख रहे हैं।

जितनी देर तक वह दृश्य दिखलाई दिया, उतनी देर तक मैं देखता रहा और अपने दो सजल नेत्ररूपी पल्लवोंसे उन दोनों चरण-कमलोंको बार बार माँजता-पोंछता रहा।

अन्तमें जब नाव वहाँसे कुछ दूर चली गई और किनारेके एक वृक्षकी आड़में हो गई, तब सहसा मानो मुझे यह याद आया कि मुझसे कोई भूल हो गई। मैंने चौंककर मल्लाहसे कहा—देखो जी, अब आज हमारा हुगली जाना नहीं हो सका। अब तुम यहींसे नाव लौटाकर घरकी ओर ले चलो। पर जब नाव लौटने लगी, तब चढ़ाव होनेके कारण मल्लाहोंको डाँड़ खेना पड़ा। उसके शब्दसे मैं कुछ संकुचित हो गया। मानो डाँड़का वह शब्द किसी ऐसे पदार्थपर आघात करने लगा, जो सचेतन, सुन्दर और सुकुमार है, जो अत्यन्त आकाशव्यापी है और जो हिरनके बच्चेके समान भीरु है। नाव जब फिर उस घाटके पास पहुँची, तब डाँड़का शब्द सुनकर मेरी पड़ोसिनने धीरेसे सिर उठाकर बहुत ही कोमल कुतूहलपूर्वक मेरी नावकी ओर देखा। पर क्षण ही भर बाद वह मेरी व्यग्र और व्याकुल दृष्टि देखकर चकित हो गई और घरके अन्दर चली गई। उस समय मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानो मैंने उसे कोई आघात पहुँचाया है—मानो मेरे कारण उसे कहीं चोट लगी है।

जब वह जल्दी जल्दी उठने लगी, तब उसकी गोदमेंसे आधा

काटकर खाया हुआ एक अधपका अमरूद गिर पड़ा और लुढ़कता हुआ नीचेकी सीढ़ीपर आ पड़ा। उस अमरूदपर उसके दाँतोंके चिह्न थे और उसने उसे होठोंसे लगाया था; इसलिए उसके वास्ते मेरा सारा अन्तःकरण उत्सुक हो उठा। परन्तु उस समय मल्लाहोंकी लज्जाके कारण मैं उसे दूरहीसे देखता चला गया। मैंने देखा कि उत्तरोत्तर लोलुप होनेवाले ज्वारका जल छल छल करता हुआ अपनी लोल रसनाके द्वारा वह फल प्राप्त करनेके लिए बार बार आगे बढ़ रहा है। मैंने समझ लिया कि आध घण्टेमें उसका यह निर्लज्ज अध्यवसाय चरितार्थ हो जायगा। उस समय मैं बहुत ही कष्टपूर्ण चित्तसे अपने मकानके पासवाले घाटपर पहुँचकर नावसे उतर पड़ा।

अब मैं फिर उसी वट वृक्षकी छायामें पैर पसारकर दिन-भर स्वप्न देखने लगा। मैं देखता कि दो कोमल पद-पल्लवोंके नीचे विश्व-प्रकृति सिर झुकाकर पड़ी हुई है। मैंने देखा कि आकाश प्रकाशमान हो रहा है, पृथ्वी पुलकित हो रही है और वायु चञ्चल हो रहा है। उन सबके बीचमें वे दोनों खुले हुए पैर बिलकुल स्थिर, शान्त और बहुत ही सुन्दर जान पड़ते हैं। वे यह नहीं जानते कि हमारी ही धूलकी मादकतासे तप्त-यौवन नव-वसन्त दिशा-विदिशाओंमें रोमाञ्चित हो उठा है।

अब तक प्रकृति मेरे लिए विक्षिप्त और विच्छिन्न थी। नदी, वन और आकाश सभी मेरे लिए स्वतंत्र थे। आज उसी विशाल, विपुल विकीर्णतामें जब मुझे एक सुन्दरी प्रतिमूर्त्ति दिखाई दी तब मानो वे सभी अवयव धारण करके एक हो गये। आज प्रकृति मेरे लिए एक और सुन्दर दीख पड़ी। वह मुझसे मूक भावसे विनय कर रही है कि मैं मौन हूँ, तुम मुझे भाषा दो। मेरे अन्तःकरणमें जो एक अव्यक्त स्तव उठ रहा है, उसे तुम छन्द, लय और तानमें अपनी सुन्दर मानव-भाषामें ध्वनित कर दो।

प्रकृतिकी उस नीरव प्रार्थनासे मेरे हृदयकी तन्त्री बज रही है। बार बार मैं केवल यही गान सुन रहा हूँ, "हे सुन्दरी, हे मनोहारिणी, हे विश्व-विजयिनी, हे मन और प्राणरूपी पतंगकी एक मात्र दीप-शिखा, हे अपरिसीम जीवन, हे अनन्त मधुर मृत्यु।" मैं इस गानको समाप्त नहीं कर सकता, इसे संलग्न नहीं कर सकता, इसे आकारमें परिस्फुटित नहीं कर सकता। इसे छन्दोंमें बाँधकर व्यक्त करके मुँहसे कह नहीं सकता। ऐसा जान पड़ता है कि मानो मेरे अन्तरमें ज्वारके जलके समान एक अनिर्वचनीय अपरिमेय शक्तिका संचार हो रहा है। इस समय मैं उसे अपने काबूमें नहीं कर सकता। जिस समय कर सकूँगा, उस समय मेरा कंठ अकस्मात् दिव्य संगीतसे ध्वनित हो उठेगा—मेरा ललाट अलौकिक आभासे प्रकाशमान हो उठेगा।

ऐसे समयमें उस पारके नईहाटी स्टेशनसे एक नाव आकर मेरे बागके सामने घाटपर लगी। दोनों कन्धोंपर पड़ी हुई चादर झुलाता हुआ, बगलमें छाता दबाए, हँसता हुआ अमूल्य उस परसे उतर पड़ा। अकस्मात् अपने उस मित्रको देखकर मेरे मनमें जिस प्रकारका भाव उठा, उस प्रकारका भाव, मैं आशा करता हूँ, किसीके मनमें शत्रुके प्रति भी न उठता होगा। दोपहरके प्रायः दो बजेके समय मुझे उसी वटकी छायामें बिलकुल पागलोंकी तरह बैठा हुआ देखकर अमूल्यके मनमें एक बहुत बड़ी आशाका संचार हुआ। कदाचित् उसे इस बात-का भय हुआ होगा कि देशके भावी सर्वश्रेष्ठ काव्यका कोई अंश मेरे पैरोंकी आहट सुनकर जंगली राजहंसकी तरह कूदकर जलमें न जा पड़े, इसलिए वह बहुत ही संकुचित भावसे धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा। उसे इस दशामें देखकर मुझे और भी क्रोध आया। कुछ अधीर होकर मैंने पूछा—क्यों जी अमूल्य, यह बात क्या है! तुम्हारे पैरमें कोई काँटा तो नहीं गड़ गया? अमूल्यने सोचा कि मैंने कोई बहुत मजेदार

बात कही है। वह हँसता हुआ मेरे पास आ गया और आँचलसे वृक्षके नीचेकी भूमि बहुत अच्छी तरह झाड़ पोछकर उसने जेबसे एक रूमाल निकाला। तहें खोलकर उसे बिछाया और तब उसके ऊपर सावधानतापूर्वक बैठकर कहा—जो प्रहसन तुमने लिख भेजा है, उसे पढ़ते पढ़ते तो मारे हँसीके जान निकलने लगती है। इतना कहकर वह स्थान स्थानसे उसकी आवृत्ति करने लगा और इतना अधिक हँसने लगा कि उसका साँस रुकनेकी नौबत आ गई। पर मुझे उस समय यह जान पड़ने लगा कि जिस कलमसे मैंने वह प्रहसन लिखा था, वह कलम जिस वृक्षकी लकड़ीसे बनी थी, यदि इस समय मुझे वह वृक्ष मिल जाता और मैं उसे जड़समेत उखाड़ डालता तथा ढेर-सी आग जलाकर उस प्रहसनको उसीमें रखकर राख कर देता, तो भी मेरा खेद न मिटता।

अमूल्यने संकोचपूर्वक पूछा—तुम्हारा वह काव्य कहाँ तक पहुँचा? उसका यह प्रश्न सुनकर मेरा शरीर और भी जलने लगा। मैंने मन ही मन कहा—जैसा मेरा काव्य है, वैसी ही तुम्हारी बुद्धि भी है! फिर उससे कहा—भाई, ये सब बातें फिर हुआ करेंगी। तुम इस समय मुझे व्यर्थ तंग मत करो।

अमूल्य बहुत कुतूहली आदमी था। बिना चारों ओर देखे वह रह ही न सकता था। उसके भयसे मैंने उत्तर ओरका दरवाजा बन्द कर दिया। उसने मुझसे पूछा—क्यों जी, उधर क्या है? मैंने कहा—कुछ भी नहीं! आज तक मैंने अपने जीवनमें कभी इतना बड़ा झूठ नहीं बोला था।

दो दिनों तक मुझे अनेक प्रकारसे तंग करने और अच्छी तरह जलानेके उपरान्त तीसरे दिन सन्ध्याकी गाड़ीसे अमूल्य चला गया। इन दो दिनोंमें मैं बागके उत्तरकी ओर नहीं गया। यहाँ तक कि

मैंने उधर देखा भी नहीं। जिस प्रकार कृपण अपना रत्न-भाण्डार छिपाता फिरता है, उसी प्रकार मैं भी अपने उस उत्तर ओरवाले बाग-की हिफाजत करता फिरता था। ज्यों ही अमूल्य वहाँसे रवाना हुआ त्यों ही मैं दौड़कर दरवाजा खोलता हुआ उत्तर ओरवाले बरामदेमें जा पहुँचा। ऊपर खुले हुए आकाशमें प्रथम कृष्ण पक्षकी अपर्याप्त चाँदनी थी और नीचे शाखा-जाल-निबद्ध तरुश्रेणीके नीचे खंड किरणोंसे खचित, एक गम्भीर और एकान्त प्रदोषान्धकार था जो मर्मर शब्द करते हुए सघन पत्तोंके दीर्घ निश्वासमें, वृक्षोंसे गिरे हुए बकुलके फूलोंके सघन सौरभमें और सन्ध्यारूपी जंगलकी स्तम्भित और संयत निःशब्दतामें रोम रोम परिपूर्ण हो रहा था। इसी अन्धकारमें मेरी कुमारी पड़ोसिन सफेद मूछोंवाले अपने वृद्ध पिताका दाहिना हाथ पकड़े हुए धीरे धीरे टहल रही थी और कुछ बातें कर रही थी। वृद्ध पिता स्नेह तथा श्रद्धापूर्वक कुछ झुककर चुपचाप मन लगाये उसकी बातें सुन रहे थे। इस पवित्र और स्निग्ध विश्रम्भालापमें बाधा देनेवाली कोई चीज नहीं थी। केवल सन्ध्या समयकी शान्त नदीमें कहीं कहीं होनेवाला डाँड़का शब्द बहुत दूरीपर विलीन हो जाता था और वृक्षोंकी घनी शाखाओंके असंख्य घोंसलोंमेंसे कभी कभी बीच बीचमें दो एक पक्षी मृदु शब्द करते हुए जाग उठते थे। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मानो मेरा हृदय आनन्द अथवा वेदनासे विदीर्ण हो जायगा। मेरा अस्तित्व मानो फैलकर उस छाया-लोकविचित्र पृथ्वीके साथ मिलकर एक हो गया। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि मानो मेरे वक्षःस्थल पर कोई धीरे धीरे चल रहा है; मानो मैं वृक्षोंके पत्तोंके साथ संलग्न हो गया हूँ और मेरे कानोंके पास कोमल गुंजारकी ध्वनि हो रही है। इस विशाल मूढ़ प्रकृतिकी अन्तर्वेदना मानो मेरे सारे शरीरकी हड्डियों तकमें पैठ गई है। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि पृथ्वी मेरे पैरोंके नीचे पड़ रही है; परन्तु पैर उसपर जमकर नहीं बैठ सकता और इसीलिए अन्दर ही अन्दर मनमें न

जाने क्या हो रहा है। ऐसा जान पड़ता था कि झुकी हुई शाखाएँ वनस्पतियोंकी बातें सुन सकती हैं; पर कुछ समझ नहीं सकतीं और इसी लिए सब शाखाएँ पत्तोंके साथ मिलकर पागलोंकी भाँति उदूर्ध्व श्वास लेती हुई हाहाकार करना चाहती हैं। मैं भी अपने समस्त अंगों और समस्त अन्तःकरणसे वह पदविक्षेप और वह विश्रम्भालाप अव्य-वहित भावसे अनुभव करने लगा; परन्तु किसी भी प्रकार उसे पकड़ नहीं सका; इसी लिए झूर झूर कर मरने लगा।

दूसरे दिन मुझसे नहीं रहा गया। प्रातःकाल ही मैं अपने पड़ो-सीसे भेंट करने चला गया। उस समय भवनाथ बाबू अपने पास चायका एक बहुत बड़ा प्याला रक्खे हुए आँखोंपर चश्मा लगाये नीली पेन्सि-लसे दाग की हुई हैमिल्टनकी एक बहुत पुरानी पुस्तक बहुत ही ध्यान' पूर्वक पढ़ रहे थे। जब मैंने उनके कमरेमें प्रवेश किया, तब वे चश्मेके ऊपरी भागमेंसे कुछ देर तक अन्यमनस्क भावसे मुझे देखते रहे; पर पुस्तकपरसे तत्काल ही अपना मन न हटा सके। अन्तमें वे चकित होकर कुछ त्रस्त भावसे आतिथ्यके लिए सहसा उठ खड़े हुए। मैंने संक्षेपमें उनको अपना परिचय दिया। वे इतने घबरा-से गये कि चश्मेका खाना ढूँढ़नेपर भी न पा सके। वे आप ही आप बोले—आप चाय पीएँगे? यद्यपि मैं कभी चाय नहीं पीता था; तथापि मैंने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है। भवनाथ बाबू कुछ घबराकर 'किरण' 'किरण कहकर पुकारने लगे। दरवाजेके पाससे बहुत ही मधुर शब्द सुनाई दिया—हाँ बाबूजी। इसके उपरान्त मैंने देखा कि तपस्वी कण्वकी कन्या मुझे देखते ही सहमी हुई हरिनीकी भाँति वहाँसे भागना चाहती है। भवनाथ बाबूने उसे अपने पास बुलाया और मेरा परिचय देते हुए कहा—ये हमारे पड़ोसी बाबू महीन्द्रकुमार हैं। और मुझसे कहा—यह मेरी कन्या किरणबाला है। लाख सोचनेपर भी मेरी समझमें न आया

कि मुझे क्या करना चाहिए। इतनेमें किरणने बहुत ही नम्रतापूर्वक और बहुत ही अच्छे ढंगसे नमस्कार किया। मैंने भी जल्दी अपनी गलती सुधारते हुए उसके नमस्कारका बदला चुकाया। भवनाथ बाबूने कहा—बेटी, महीन्द्र बाबूके लिए एक प्याला चायका ला देना होगा। मैं मन ही मन बहुत ही संकुचित हुआ। पर मेरे मुँहसे कुछ शब्द निकलनेसे पहले ही किरण कमरेसे बाहर निकल गई। मुझे ऐसा जान पड़ा कि कैलासवासी सनातन भोलानाथने अपनी कन्या लक्ष्मीको ही अतिथिके लिए एक प्याला चाय लानेके लिए कहा है। अतिथिके लिए तो वह निश्चय ही शुद्ध अमृत होगा। परन्तु फिर भी, पासमें कोई नन्दी भृंगी उपस्थित नहीं था!

४

अब मैं भवनाथ बाबूके यहाँ नित्य अतिथि बनकर पहुँचने लगा। पहले मैं चायसे बहुत डरा करता था। पर अब सबेरे सन्ध्या दोनों समय मुझे चाय पीनेका नशा-सा हो गया।

हम लोगोंकी बी० ए० की परीक्षाके लिए एक जर्मन विद्वानका बनाया हुआ दर्शनशास्त्रका एक नया इतिहास था, जो मैंने हालमें ही पढ़ा था। कुछ दिनों तक तो मैंने यही प्रकट किया कि मैं उसी दर्शन-शास्त्रकी आलोचना करनेके लिए भवनाथ बाबूके पास आया करता हूँ। वे अभी तक हैमिल्टन आदि पुराने लेखकोंकी ही कुछ भ्रान्त पुस्तकें पढ़ा करते थे; इसलिए मैं उन्हें कृपापात्र समझा करता और अपनी नई विद्या बहुत ही आडम्बरके साथ उनपर प्रकट किया करता। भवनाथ बाबू इतने बड़े भले आदमी और सभी विषयोंमें इतने अधिक संकोची थे कि मेरे जैसे अल्पवयस्कके मुँहसे निकली हुई भी सब बातें मान लेते। यदि उन्हें मेरी किसी बातका तनिक भी प्रतिवाद करना

होता, तो वे अस्थिर हो जाते । उन्हें यही डर लगा रहता कि कहीं मैं उनकी बातोंसे नाराज न हो जाऊँ । जब हम लोग इस प्रकारके तत्त्वालोचनमें लग जाते, तब किरण किसी बहानेसे वहाँसे उठकर चली जाती । उस समय मेरे मनमें कुछ क्षोभ उत्पन्न होता; पर साथ ही मैं कुछ गर्व भी अनुभव करता । क्योंकि मेरी समझमें हम लोगोंके आलोच्य विषयका दुरूह पाण्डित्य किरणके लिए दुःसह था । वह जब मन ही मन हम लोगोंके विद्यारूपी पर्वतका परिमाप करती होगी तब मेरी समझमें उसे बहुत ही ऊँचेकी ओर सिर उठाना पड़ता होगा !

जब मैं किरणको दूरसे देखता था, तब मैं उसे शकुन्तला और दमयन्ती आदि विचित्र नामों और विचित्र भावोंसे समझा करता था । पर जब मैं उसके घर आने जाने लगा, तब मैंने यह समझना आरम्भ किया कि वह किरण है । अब वह संसारकी विचित्र नायिकाओंकी छायारूपिणी नहीं रह गई । अब वह केवल किरण ही है । अब वह सैकड़ों शताब्दियोंके काव्य-लोकसे अवतीर्ण होकर अनन्त कालके युवक-चित्तके स्वप्न-स्वर्गका परिहार करके एक निर्दिष्ट बंगालीके घरमें कुमारी कन्याके रूपमें विराज रही है । वह मेरे साथ मेरी ही मातृभाषामें घरकी बहुत ही साधारण बातें किया करती है । साधारण बातोंमें वह सरल भावसे हँस पड़ती है । वह हम ही लोगोंके घरकी लड़कियोंकी भाँति दोनों हाथोंमें सोनेके दो कड़े पहिनती है । उसके गलेके हारमें भी कोई विशेषता नहीं है, पर फिर भी वह बहुत सुमिष्ट है । साड़ीका आँचल कभी तो जूड़ेके ऊपरी भाग परसे तिरछा होकर आता है और कभी पितृ-गृहके अनभ्यासके कारण खिसककर नीचे गिर जाता है । मेरे लिए यह बहुत ही आनन्दकी बात होती है । वह काल्पनिक नहीं है; वह सत्य है; वह किरण है; वह इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है; और

न इससे कुछ अधिक ही है ; और यद्यपि वह मेरी नहीं है, पर फिर भी हम लोगोंकी तो है ; आदि आदि बातोंका अनुभव करके मेरा अन्तःकरण सदा उसके प्रति कृतज्ञताके रससे अभिषिक्त रहा करता है।

एक दिन ज्ञान मात्रकी आपेक्षिकताकी चर्चा चली। मैं इस विषयमें भवनाथ बाबूके सामने बहुत अधिक उत्साहके साथ अपनी वाचालता प्रकट करने लगा। ज्यों ही आलोचना कुछ और आगे बढ़ी, त्यों ही किरण वहाँसे उठकर चली गई। पर थोड़ी ही देर बाद वह एक चूल्हा और भोजन बनानेकी सामग्री लेकर सामनेवाले बरामदेमें आ पहुँची और भवनाथ बाबूपर कुछ बिगड़ती हुई बोली—बाबूजी, क्यों तुम इतना कठिन विषय उठाकर महीन्द्र बाबूको व्यर्थ बकवा रहे हो! आइए महीन्द्र बाबू, इससे अच्छा तो यह है कि आप मुझे भोजन बनानेमें कुछ सहायता दें, जिससे कुछ काम भी निकले।

इसमें भवनाथ बाबूका कोई दोष नहीं था; और किरण यह बात जानती भी थी। परन्तु भवनाथ बाबूने अपराधीकी भाँति अनुतप्त होकर कुछ हँसते हुए कहा—अच्छा जी, जाने दो। ये सब बातें फिर किसी दिन होंगी। इतना कहकर वे निरुद्विग्न भावसे अपने नित्य नियमित अध्ययनमें लग गये।

एक और दिनकी बात है कि मैं तीसरे पहरके समय एक और गम्भीर विषय छेड़कर भवनाथ बाबूको चकित कर रहा था कि उसी समय किरणने बीचमें पहुँचकर कहा—महीन्द्र बाबू, आपको अबलाकी सहायता करनी पड़ेगी। मैं उस दीवारपर लता चढ़ाऊँगी, पर मेरा हाथ उतने ऊँचे तक नहीं पहुँचता। वहाँ आपको जरा यह खूँटी गाड़ देनी होगी। मैं बहुत अधिक प्रसन्नतासे उठकर चला गया। भवनाथ बाबू भी प्रसन्नतापूर्वक फिर अपने अध्ययनमें लग गये।

इस प्रकार जब जब मैं भवनाथ बाबूके साथ बातचीत करते समय

कोई भारी विषय छेड़ता था; तब तब किरण किसी न किसी बहानेसे आकर उस चर्चाको बीचमें ही तोड़ देती थी। इससे मैं, मन ही मन पुलकित हो उठता था। मैं समझता था कि किरणने मेरा अभिप्राय समझ लिया है। उसे किसी प्रकार यह मालूम हो गया है कि भवनाथ बाबूके साथ तत्त्वालोचना करनेमें ही मेरे जीवनका चरम सुख नहीं है। जिस समय मैं बाह्य वस्तुओंके साथ अपने इन्द्रिय-बोधका सम्बन्ध निश्चित करनेके लिए दुरूह रहस्य-रसातलके मध्य भागमें पहुँचता था, उस समय किरण आकर कहती थी—आइए महीन्द्र बाबू, चलिए रसोई घरके पास ही मेरा बैंगनका खेत है, आपको दिखला लाऊँ।

एक दिन मैं अपना यह मंन्तव्य प्रकट कर रहा था कि 'आकाशको असीम समझना हम लोगोंका अनुमान मात्र है; हम लोगोंकी अभिज्ञता और कल्पना शक्तिके बाहर कहीं किसी ऐसी सीमाका होना असम्भव नहीं है' कि इतनेमें किरण आकर कहने लगी—'महीन्द्र बाबू, दो आम पक गये हैं। आप चलकर डाल झुकाकर वह आम तोड़ दीजिए।'

कैसा अच्छा उद्धार था! कैसी अच्छी मुक्ति थी! अनन्त समुद्रके मध्यमेंसे क्षण ही भरमें मैं कैसे सुन्दर किनारेपर आ पहुँचता था। अनन्त आकाश और बाह्य वस्तुओंके सम्बन्धमें संशय-जाल कितना ही अधिक दुश्छेद्य और जटिल क्यों न हो, परन्तु बैंगनके खेत अथवा आमोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी दुरूहता अथवा सन्देहका नाम भी न था। वह काव्य या उपन्यासमें उल्लेख करनेके योग्य तो नहीं है, पर फिर भी जीवनमें वह समुद्रसे घिरे हुए द्वीपके समान मनोहर है। जमीनपर पैर टिकनेसे कैसा आराम मिलता है, यह वही जानता है जो बहुत देर तक पानीमें गोता खा चुकता है। मैंने इतने दिनों

तक कल्पनाके द्वारा जिस प्रेम-समुद्रकी सृष्टि की थी, वह यदि वास्तविक होता, तो मैं बहुत दिनों तक किस प्रकार उसमें डूबता उतराता फिरता, यह मैं नहीं कह सकता। वहाँ आकाश भी असीम होता और समुद्र भी असीम होता। उस स्थानसे हम लोगोंकी नित्य प्रतिकी जीवन-यात्राका सीमाबद्ध व्यापार बिलकुल निर्वासित रहता। वहाँ तुच्छताका लेश मात्र भी नहीं होता। वहाँ केवल छन्द, लय और संगीतमें ही भाव व्यक्त करना होता। उसके तल तक पहुँच जानेपर फिर और कहीं ठिकाना नहीं मिलता। जब किरण डूबे हुए मुग्ध हतभाग्यको सिरके बाल पकड़कर उस जगहसे खींचकर अपनी आमकी बारी या बैंगनके खेतमें ले गई, तब अपने पैरोंके नीचे जमीन पाकर मानो मेरी जानमें जान आ गई। उस समय मैंने देखा कि बरामदेमें बैठकर खिचड़ी पकानेमें, काठकी सीढ़ीपर चढ़कर दीवारपर खूँटी ठोंकनेमें और नीबूके पेड़के घने हरे पत्तोंमेंसे हरा नीबू ढूँढनेमें सहायता करनेमें अभावनीय आनन्द मिलता है और फिर मजा यह कि वह आनन्द प्राप्त करनेमें जरा भी प्रयास नहीं करना पड़ता। आपसे आप जो बात मुँह तक आ जाय, आपसे आप जो हँसी निकल पड़े, आकाशसे जितना प्रकाश आवे और वृक्षसे जितनी छाया पड़े, वह सब यथेष्ट ही होती है। इसके सिवा मेरे पास सोनेकी एक लकड़ी थी—मेरा नवयौवन, एक पारस पत्थर था—मेरा प्रेम; एक अक्षय कल्प-तरु था—स्वयं अपने प्रति अपना पूरा और दृढ़ विश्वास। मैं विजयी था; मैं इन्द्र था; मैं अपने उच्चैःश्रवाके मार्गमें कोई बाधा नहीं देखता था। किरण मेरी किरण है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं था। यह बात मैंने इतनी देर तक स्पष्ट रूपसे नहीं कही थी; परन्तु हृदयको एक कोने-से दूसरे कोने तक बातकी बातमें बड़े सुखसे विदीर्ण करती हुई वह बात विद्युतकी तरह मेरे समस्त अन्तःकरणमें चकाचौंध डालकर क्षण-क्षणपर नाच उठती थी। किरण मेरी किरण है।

इससे पहले किसी गैर स्त्रीके साथ मेरा कोई सम्पर्क नहीं हुआ था। आजकलकी जो स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करके परदेके बाहर निकलकर घूमा फिरा करती हैं, उनकी रीति नीतिसे मैं कुछ भी परिचित नहीं था; इसी लिए मैं यह भी नहीं जानता था कि उन लोगोंके आचरणमें किस जगह शिष्टताकी सीमा और किस जगह प्रेमका अधिकार है। पर साथ ही मैं यह भी नहीं जानता था कि वे क्यों मुझसे प्रेम न करेंगी। भला मैं किस बातमें कम हूँ!

किरण जिस समय मेरे हाथमें चायका प्याला दिया करती थी, उस समय मैं चायके साथ साथ किरणके प्रेमसे भरा हुआ पात्र भी ग्रहण किया करता था। जिस समय मैं चाय पीया करता था, उस समय मैं सोचता था कि मेरा ग्रहण करना सार्थक हुआ और यह भी सोचता था कि किरणका दान भी सार्थक हुआ। किरण यदि सहज स्वरमें भी कहती–महीन्द्र बाबू, कल सवेरे आइएगा न? उस समय उसमेंसे छन्द और लयके साथ झङ्कृत हो उठता था:—

"कि मोहिनी जान बन्धु कि मोहिनी जान!
अबलार प्राण निते नाहि तोमा हेन!"

(प्यारे, तुम कैसी मोहनी जानते हो! तुम्हें एक अबलाके प्राण इस तरह न लेना चाहिए!)

मैं सहज भावसे उत्तर दिया करता था—हाँ, कल आठ बजे तक आऊँगा। क्या मेरे इस कहनेमें किरण यह नहीं सुनती थी कि—

"पराण पुतलि तुमि हिये मणिहार,
सरवस-धन मोर सकल संसार।"

(तुम मेरे प्राणोंकी पुतली हो, हृदयके हार हो, सर्वस्व हो और सकल संसार हो।)

मेरे समस्त दिन और समस्त रात्रियाँ अमृतसे परिपूर्ण हो गईं। मेरे सारे विचार और सारी कल्पनाएँ क्षण क्षणमें नई नई शाखाओं और प्रशाखाओंका विस्तार करके किरणको लताकी भाँति मेरे चारों ओर लपेटकर मुझे बाँधने लगीं। जिस समय वह शुभ अवसर आवेगा, उस समय मैं किरणको क्या पढ़ाऊँगा, क्या सिखाऊँगा, क्या सुनाऊँगा, क्या दिखाऊँगा, इत्यादि इत्यादि अनेक प्रकारकी कल्पनाओं और संकल्पोंसे मेरा मन मानो आच्छन्न हो गया। यहाँ तक कि मैंने निश्चय किया कि मैं उसे ऐसी शिक्षा दूँगा, जिसमें उसके मनमें जर्मन विद्वानके बनाये हुए दर्शन-शास्त्रके नवीन इतिहासके प्रति भी उत्सुकता उत्पन्न हो। क्योंकि यदि मैं ऐसा न करूँगा, तो वह मुझे पूरी तरह न समझ सकेगी। अँगरेजी काव्य-साहित्यके सौन्दर्यके प्रकाशमें मैं उसे मार्ग दिखलाकर ले चलूँगा। मैं मन ही मन हँसा और बोला—किरण, तुम्हारी आमकी बारी और बैंगनका खेत मेरे लिए नवीन राज्य है। मैं कभी स्वप्नमें भी यह बात नहीं जानता था कि वहाँ बैंगन और गिरे पड़े कच्चे आमोंके सिवा दुर्लभ अमृत फल भी इतने सहजमें मिल सकता है। किन्तु जब समय आवेगा, तब मैं भी तुम्हें एक ऐसे राज्यमें ले चलूँगा, जहाँ बैंगन तो नहीं फलते, परन्तु फिर भी बैंगनोंका अभाव क्षण-भरके लिए भी अनुभव नहीं किया जा सकता। वह ज्ञानका राज्य और भावोंका स्वर्ग है।

जिस प्रकार सूर्यास्तके समय दिगन्तमें विलीन होनेवाला पाण्डु वर्णका सन्ध्या-तारा घनी होनेवाली सन्ध्यामें धीरे धीरे परिस्फुट दीप्ति प्राप्त करता है, उसी प्रकार किरण भी कुछ दिनोंमें अन्दर ही अन्दर आनन्द, लावण्य और नारीत्वकी पूर्णतासे मानो प्रस्फुटित हो उठी। वह मानो अपने घरमें, अपने संसारके ठीक मध्य आकाशमें, अधिरोहण करके चारों ओर आनन्दकी मंगल ज्योति विकीर्ण करने लगी। उसी

ज्योतिसे उसके वृद्ध पिताके सफेद बालोंपर पवित्रताकी उज्ज्वल आभा पड़ी और उसी ज्योतिने मेरे लहराते हुए हृदय-समुद्रकी प्रत्येक तरंग-पर एक एक करके किरणके मधुर नामके ज्योतिर्मय अक्षर मुद्रित कर दिये।

इधर मेरी छुट्टी समाप्त होनेको आई। पहले विवाहके लिए घर आनेका पिताजीका जो स्नेहपूर्ण अनुरोध था, वह अब धीरे धीरे कठोर आज्ञाके रूपमें परिणत होता हुआ जान पड़ने लगा। उधर अमूल्य भी अब अधिक दिनों तक रोका नहीं जा सकता था। मेरे मनमें इस बात-के कारण भी धीरे धीरे प्रबल उद्वेग होने लगा कि कहीं किसी दिन उन्मत्त जंगली हाथीकी भाँति वह मेरे इस पद्मवनमें न आ पहुँचे और अपने बड़े बड़े चारों पैर उसमें न रख दे। अब मैं यही सोचने लगा कि मैं किस प्रकार जल्दीसे अपने मनकी आकांक्षा प्रकट करके अपने प्रणयको परिणयमें विकसित कर लूँ।

५

एक दिन दोपहरके समय मैंने भवनाथ बाबूके घरमें जाकर देखा कि वे ग्रीष्मकी धूपमें एक चौकीपर पड़े हुए सो रहे हैं और सामने गंगा-तटवाले बरामदेमें निर्जन घाटकी सीढ़ियोंपर बैठी हुई किरण कोई पुस्तक पढ़ रही है। मैंने चुपचाप पीछेसे जाकर देखा कि वह कविताओंका एक नवीन संग्रह है। उसका जो पृष्ठ खुला हुआ था, उसमें अँगरेज कवि शेलीकी एक कविता उद्धृत थी और उसके बगलमें लाल स्याहीसे एक लकीर खींची हुई थी। उस कविताको पढ़कर किरणने एक ठंडा साँस लिया और स्वप्नके भारसे आकुल दृष्टिसे आकाशके दूरतम प्रान्तकी ओर देखा। ऐसा जान पड़ता था कि उस एक कविताको किरण आज एक घंटेमें दस बार पढ़ चुकी है और वही कविता उसने अनन्त नीले

आकाशमें अपनी हृदय-तरणीके पालको केवल एक ही उत्तप्त दीर्घ निश्वाससे भरकर बहुत दूरके नक्षत्र लोकमें भेजी है। मैं यह तो नहीं जानता कि शेलीने वह कविता किसके लिए बनाई थी; पर हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि महीन्द्रनाथ नामक किसी बंगाली युवकके लिए नहीं बनाई थी।

फिर भी मैं जोर देकर यह बात कह सकता हूँ कि आज इस स्तव-गानपर मेरे सिवा और किसीका अधिकार नहीं हो सकता। किरणने उस कविताके पास ही अपनी अन्तरतम हृदय-पेन्सिलसे एक लाल निशान लगा दिया था। उस स्नेह-वेष्टनीके मोह मन्त्रसे वह कविता आज उसी-की थी और उसके साथ ही साथ मेरी भी थी। मैंने अपने पुलकित चित्त-को रोककर सहज स्वरमें पूछा—क्या पढ़ रही हैं? पालके जोरसे चलती हुई नाव मानो एकाएक किसी चरमें जाकर फँस गई। किरण चौंक पड़ी और उसने वह किताब जल्दीसे बन्द करके अपने आँचलमें छिपा ली। मैंने हँसते हुए पूछा—जरा मैं आपकी पुस्तक देख सकता हूँ? मानो किरणको कोई बात खटकी। उसने आग्रहपूर्वक कहा—नहीं नहीं, वह किताब रहने दीजिए।

मैं कुछ दूर पर एक सीढ़ी नीचे बैठकर काव्य-साहित्यकी बातें कहने लगा। मैंने इस प्रकार बात उठाई कि जिसमें किरणको भी साहित्यकी कुछ शिक्षा मिले और मेरे मनकी बात अँगरेज कविकी जबानी व्यक्त भी हो जाय। उस तेज धूप और गहरी निस्तब्धतामें जल और स्थलके छोटे छोटे कल-कल-शब्द निद्रा-कातर माताकी लोरियोंके समान बहुत ही मृदु और सकरुण हो गये।

किरण मानो अधीर हो गई। वह बोली—बाबूजी अकेले बैठे हुए हैं। क्या आप अनन्त आकाशके सम्बन्धका अपना यह तर्क समाप्त न करेंगे? मैंने मन ही मन सोचा कि अनन्त आकाश तो बहुत दिनों तक

रहेगा और उसके सम्बन्धका तर्क भी कभी समाप्त न होगा; परन्तु जीवन बहुत ही थोड़ा है और उसमें मिलनेवाला शुभ अवसर दुर्लभ और क्षणस्थायी है। मैंने किरणकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया और कहा—मैं आज आपको कुछ कविताएँ सुनाऊँगा। किरणने कहा—कल सुनूँगी। इतना कहकर वह चटपट उठ खड़ी हुई और कमरेकी ओर देखकर बोली—बाबूजी, महीन्द्र बाबू आये हैं। नींद टूट जानेसे भवनाथ बाबू बालकोंकी भाँति अपने सरल नेत्र खोलकर मानो कुछ व्यस्त हो गये। मेरे कलेजेपर मानों धकसे बहुत तेज चोट लगी। मैं भवनाथ बाबूके कमरेमें जाकर अनन्त आकाशके सम्बन्धमें तर्क करने लगा और किरण वह किताब हाथमें लेकर शायद उसे निर्विघ्न रूपसे पढ़नेके लिए दूसरी मंजिलके अपने निर्जन सोनेके कमरेमें चली गई।

दूसरे दिन सबेरे डाकसे स्टेट्समैन अखबारकी एक प्रति मिली, जिसपर लाल पेन्सिलसे निशान किया हुआ था और जिसमें बी० ए० की परीक्षाका फल प्रकाशित हुआ था। सबसे पहले मेरी दृष्टि पहले डिविजनके खानेमें किरणबाला वन्द्योपाध्यायके नामपर पड़ी। पर स्वयं मेरा नाम पहले, दूसरे या तीसरे, किसी भी डिवीजनमें, नहीं मिला।

परीक्षामें अकृतार्थ होनेकी जो वेदना थी, वह तो थी ही; उसके साथ ही साथ वज्राग्निकी भाँति एक और सन्देह मुझे जलाने लगा। वह सन्देह यह था कि वह किरणबाला वन्द्योपाध्याय, हो न हो, मेरी ही किरणबाला है। यद्यपि उसने मुझसे यह बात कभी नहीं कही थी कि मैंने कालिजमें शिक्षा पाई है, परन्तु फिर भी मेरा यह सन्देह धीरे धीरे प्रबल होने लगा। कुछ देर तक सोचनेपर मैंने उसका कारण समझ लिया। बात यह थी कि वृद्ध पिता और उनकी कन्याने कभी अपने सम्बन्धमें कोई भी बात न कही थी। और मैं भी सदा अपनी ही कहानी कहने और अपना ही विद्या-बल दिखलानेमें इतना अधिक नियुक्त रहता

था कि मैंने उनके सम्बन्धकी बातें कभी उनसे अच्छी तरह पूछी ही नहीं थीं।

अभी हालमें मैंने जर्मन विद्वानका लिखा हुआ दर्शन-शास्त्रका जो इतिहास पढ़ा था, उसके सम्बन्धके तर्क मुझे याद आने लगे। यह भी याद आया कि मैंने एक दिन किरणसे कहा था कि यदि मुझे कुछ दिनों तक आपको कुछ पुस्तकें पढ़ानेका सुयोग मिले, तो अँगरेजी काव्य-साहित्यके सम्बन्धमें मैं आपमें एक बहुत अच्छी धारणा उत्पन्न कर सकूँगा।

किरणबालाने दर्शन-शास्त्रमें 'आनर' प्राप्त किया था और वह साहित्यमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुई थी। यदि वह यही किरण हो तो?

अन्तमें मैंने बहुत खोदकर अपने भस्माच्छन्न अहंकारको उद्दीप्त किया और कहा—है, तो हुआ करे। मेरी रचनावली ही मेरी विजयका स्तम्भ है। इतना कहकर मैं पहलेकी अपेक्षा और भी अधिक ऊँचा सिर करके जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ भवनाथ बाबूके बागमें जा पहुँचा।

उस समय वहाँ कमरेमें कोई नहीं था। मैं एक बार अच्छी तरह उस वृद्धकी पुस्तकोंका निरीक्षण करने लगा। मैंने देखा कि एक कोनेमें मेरा वही जर्मन विद्वानका लिखा हुआ दर्शनशास्त्रका इतिहास अनादरसे पड़ा हुआ है। खोलकर मैंने देखा कि उस पुस्तकके प्रायः सभी किनारे स्वयं भवनाथ बाबूके हाथके लिखे हुए नोटोंसे भरे पड़े हैं। वृद्धने स्वयं ही अपनी कन्याको पढ़ाया है, अब मुझे और कोई सन्देह नहीं रह गया।

थोड़ी देरमें भवनाथ बाबू भी उस कमरेमें आ पहुँचे। उस समय उनके चेहरेपर और दिनोंकी अपेक्षा कुछ अधिक प्रसन्नताकी ज्योति दिखलाई देती थी। ऐसा जान पड़ता था कि मानो किसी शुभ समाचारकी निर्झर-धारामें उन्होंने अभी अभी प्रातःस्नान किया है। मैं अक-

स्मात् कुछ दम्भपूर्वक रूखी हँसी हँसकर बोला—भवनाथ बाबू, मैं परीक्षामें फेल हो गया। जो बड़े बड़े लोग विद्यालयोंकी परीक्षाओंमें फेल होकर जीवनकी परीक्षामें पहली श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए थे, आज मानो मैं भी उन्हींमें गिने जानेके योग्य हो गया! परीक्षा, वाणिज्य, व्यवसाय, नौकरी आदिमें कृतकार्य होना साधारण कोटिके लोगोंका लक्षण है। अकृतकार्य होनेकी आश्चर्यजनक शक्ति या तो निम्नतम श्रेणीके लोगोंमें होती है और या उच्चतम श्रेणीके ही लोगोंमें पाई जाती है। भवनाथ बाबूका चेहरा स्नेहपूर्ण करुण हो गया। वे अपनी कन्याके परीक्षामें उत्तीर्ण होनेका समाचार मुझे न सुना सके। पर हाँ, मेरी असंगत उग्र प्रसन्नता देखकर वे कुछ विस्मित अवश्य हो रहे। वे अपनी सरल बुद्धिसे मेरे अभिमानका कारण न समझ सके।

इतनेमें मेरे कालिजके नवीन अध्यापक वामाचरण बाबूके साथ किरण सलज्ज सरसोज्ज्वल मुखसे वर्षासे धोई हुई लताके समान छल-छल करती हुई कमरेमें आ पहुँची। अब मेरे लिए और कुछ भी समझना बाकी नहीं रह गया। रातको घर आकर मैंने अपनी सारी रचनाएँ जला डालीं और अपने ग्राममें जाकर विवाह कर डाला।

गंगाके तटपर जिस वृहत् काव्यके लिखनेकी बात थी, वह लिखा तो नहीं गया; पर हाँ, मैंने अपने जीवनमें उसे प्राप्त कर लिया।

दृष्टि-दान

सुना है कि आजकल बहुत-सी बंगाली कन्याओंको स्वयं चेष्टा करके अपने लिए पति ढूँढ़ना पड़ता है। मैंने भी यही बात की है, पर देवताकी सहायतासे। बाल्यावस्थासे ही मैं अनेक प्रकारके व्रत और शिवपूजा किया करती थी।

मैं पूरे आठ बरसकी भी नहीं हुई थी कि मेरा विवाह हो गया। परन्तु पूर्व जन्मके पापके कारण मैं अच्छा पति पाकर भी उसे सम्पूर्ण रूपसे न पा सकी। माता त्रिनयनीने मेरी दोनों आँखें ले लीं। जीवनके अन्तिम मुहूर्त्त तक उन्होंने मुझे पतिको देख लेनेका सुख न दिया।

बाल्यावस्थासे ही मेरी अग्नि-परीक्षाका आरम्भ हुआ। मैं चौदह बरसकी भी नहीं हुई थी कि मैंने एक मृत शिशुको जन्म दिया। उस

समय मैं स्वयं भी मृत्युके बहुत कुछ समीप पहुँच गई थी। परन्तु जिसके भाग्यमें दुःख भोगना बदा है, वह यदि मर जाय, तो फिर काम कैसे चले? वह दुःख कौन भोगे? जो दीपक जलनेके लिए तैयार किया जाता है, उसका तेल नहीं घटता। रात-भर जल कर ही वह बुझता है।

मैं बच तो गई, पर चाहे शरीरकी दुर्बलतासे हो, चाहे मनके खेदसे हो अथवा और किसी कारणसे हो, मेरी आँखोंमें पीड़ा उत्पन्न हो गई।

उस समय मेरे पति डाक्टरी पढ़ रहे थे। नई नई शिक्षाके उत्साहके कारण चिकित्सा करनेका सुयोग पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वयं ही मेरी चिकित्सा करना आरम्भ किया।

भइया उस समय कालिजमें पढ़ रहे थे और बी० एल० की परीक्षा देनेवाले थे। एक दिन उन्होंने आकर मेरे स्वामीसे कहा—भला यह तुम क्या कर रहे हो! तुम तो कुसुम की दोनों आँखें नष्ट किये डालते हो। किसी अच्छे डाक्टरको बुलाकर दिखलाओ।

मेरे स्वामी ने कहा—भला अच्छा डाक्टर आकर और कौन-सी नई चिकित्सा करेगा? जो दवाएँ आदि हैं, वह तो सब मुझे मालूम ही हैं।

भइयाने कुछ बिगड़कर कहा—तब तो फिर तुममें और तुम्हारे कालिजके बड़े साहबमें कोई भेद ही न रह गया।

मेरे स्वामीने कहा—तुम कानून पढ़ते हो; डाक्टरीका हाल क्या जानो! जब तुम अपना विवाह करोगे और तुम्हारी स्त्रीकी सम्पत्तिके सम्बन्धमें कोई मुकद्दमा खड़ा होगा, तब क्या तुम मेरे परामर्शके अनुसार चलोगे?

मैं मन ही मन सोच रही थी कि जब राजा राजामें युद्ध होता है, तब सबसे अधिक विपत्ति घासके लिए ही होती है। स्वामीके साथ झगड़ा हुआ भइयाका, और दोनों ओरसे आघात होने लगे केवल मुझपर। मैंने यह भी सोचा कि जब भइया मुझे दान ही कर चुके हैं, तो फिर मेरे सम्बन्धके कर्तव्यके लिए इतना झगड़ा बखेड़ा क्यों करते हैं। मेरा सुख-दुःख और रोग-आरोग्य सभी कुछ तो मेरे स्वामीका ही है।

उस दिन मेरी आँखोंकी चिकित्साकी सामान्य बात पर ही मेरे भइया और स्वामीमें कुछ मनमुटाव हो गया। एक तो यों ही पहलेसे ही मेरी आँखोंसे पानी गिरा करता था, उस दिनसे मेरी आँखोंसे और भी अधिक पानी जाने लगा। पर उसका वास्तविक कारण उस समय न तो मेरे स्वामीकी ही समझमें आया और न भइयाकी ही समझमें।

जब मेरे स्वामी कालिज चले गये, तब तीसरे पहरके समय भइया अचानक अपने साथ एक डाक्टरको लिये हुए आ पहुँचे। डाक्टरने अच्छी तरह आँखोंकी परीक्षा करके कहा—यदि अभीसे पूरी पूरी सावधानी न की जायगी, तो आगे चलकर इस पीड़ाके बहुत अधिक बढ़ जानेकी सम्भावना है। इतना कहकर डाक्टरने कुछ दवाएँ लिख दीं और भइयाने आदमीको वह दवाएँ लानेके लिए भेज दिया।

जब डाक्टर चले गये, तब मैंने भइयासे कहा—भइया, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, इस समय मेरी जो चिकित्सा हो रही है, उसमें आप किसी प्रकारकी बाधा मत दीजिए।

मैं बाल्यावस्थासे ही भइयासे बहुत डरा करती थी। मैं जो अपने मुँहसे उनसे यह बात कह सकी, यह मेरे लिए एक बहुत ही आश्चर्यकी घटना थी। पर मैं बहुत अच्छी तरह समझती थी कि मेरे स्वामीकी चोरी-

से भइया मेरी जो यह चिकित्सा कर रहे हैं, इसमें मेरे लिए अशुभ छोड़कर शुभ नहीं है।

जान पड़ता है कि मेरी उस प्रगल्भतासे भइयाको भी कुछ आश्चर्य हुआ। कुछ देर तक चुपचाप सोचनेके उपरान्त उन्होंने मुझसे कहा—अच्छा, अब मैं डाक्टर तो फिर नहीं लाऊँगा। पर हाँ, जो दवा आवेगी, उसका एक बार अच्छी तरह सेवन अवश्य कर देखना। जब दवा आ गई, तब भइयाने मुझे उसके व्यवहारके नियम आदि बतला दिये और आप चले गये। अपने स्वामीके कालिजसे आनेके पहले ही मैंने वह शीशी, उसका खाना, सलाई और विधि-विधान आदि सबको उठाकर अपने आँगनके कतवारखानेमें फेंक दिया।

मानो भइयाके साथ कुछ जिद पड़ जानेके कारण ही मेरे स्वामी और भी दूनी चेष्टासे मेरी आँखोंकी चिकित्सामें प्रवृत्त हुए। सबेरे सन्ध्या दोनों समय दवा बदली जाने लगी। मैंने आँखोंपर पट्टी बाँधी, चश्मा लगाया, बूँद बूँद करके दवा डाली, पुल्टिश बाँधी और जब मछलीका बदबूदार तेल पीनेपर अन्दरका पाकयंत्र तक बाहर निकलनेका उद्योग करने लगा, तब भी मैं अपने आपको दमन किये रही। जब स्वामी पूछते थे—अब कैसा मालूम होता है? तब मैं कह दिया करती थी—अब तो बहुत कुछ अच्छी हो चली हूँ। मैं अपने मनसे भी यही चेष्टा करती थी कि मानो मैं अच्छी हो रही हूँ। जब आँखोंसे अधिक जल जाने लगता था, तब मैं सोचती थी कि इस जलका कटकर निकल जाना भी अच्छा ही लक्षण है। और जब जल निकलना बन्द हो जाता था, तब सोचती थी कि अब मैं आरोग्यके पथपर पहुँच गई हूँ।

पर कुछ दिनोंके उपरान्त यंत्रणा असह्य हो उठी। अब सब चीजें बहुत ही धुँधली दिखाई पड़ने लग गईं और सिरकी पीड़ाके कारण तो मैं परेशान रहने लगी। मैंने देखा कि मेरे स्वामी भी अब कुछ अप्रति-

भसे हो रहे हैं। मानो वे बहुत कुछ सोचनेपर भी यह नहीं समझ सकते हैं कि इतने दिनोंके उपरान्त अब मैं किस बहानेसे किसी डाक्टरको बुलाऊँ।

मैंने उनसे कहा—यदि भइयाका मन रखनेके लिए तुम एक बार किसी डाक्टरको बुलाकर दिखला दो, तो इसमें हर्ज ही क्या है! वे इसी बातके लिए व्यर्थ ही मनमें नाराज होते हैं, जिससे मुझे भी अन्दर ही अन्दर कष्ट होता है। चिकित्सा तो तुम्हीं करोगे। एक डाक्टरका उपसर्गके रूपमें रहना अच्छा ही है।

स्वामीने कहा—तुम ठीक कहती हो। इतना कहकर वे उसी दिन एक अँगरेज डाक्टरको ले आये। उन लोगोंमें क्या बातचीत हुई, यह तो मैं नहीं जानती, पर मेरी समझमें इतना जरूर आया कि डाक्टरने मेरे स्वामीको कुछ फटकार बतलाई और वे चुपचाप सिर झुकाये हुए उसके सामने खड़े रहे।

जब डाक्टर चला गया, तब मैंने अपने स्वामीका हाथ पकड़कर कहा—तुम कहाँसे यह गवाँर गोरा पकड़ लाये थे! कोई देशी डाक्टर ले आते। भला क्या वह मेरी आँखोंका रोग तुमसे अधिक समझ सकेगा?

स्वामीने कुछ कुण्ठित होकर कहा—तुम्हारी आँखोंमें नश्तर देनेकी आवश्यकता हुई है।

मैंने कुछ क्रोधका आभास दिखलाते हुए कहा—यह तो तुम पहलेसे ही जानते थे कि नश्तर लगाना पड़ेगा; पर आरम्भसे ही तुमने यह बात मुझसे छिपा रक्खी थी। क्या तुम यह समझते हो कि मैं नश्तरसे डरती हूँ?

स्वामीकी लज्जा दूर हो गई। उन्होंने कहा—भला तुम्हीं बतलाओ

कि स्वयं पुरुषोंमें ही इतने अधिक वीर कितने होंगे जो आँखोंमें नश्तर लगानेकी बात सुनकर डर न जायँ ?

मैंने हँसीमें कहा—पुरुषोंकी वीरता केवल स्त्रियोंके ही सामने होती है।

स्वामीने तुरन्त म्लान गम्भीर होकर कहा—यह बात ठीक है। पुरुषोंका केवल अहंकार ही सार है।

मैंने उनकी गम्भीरता उड़ाते हुए कहा—अहंकारमें भी तुम लोग कहीं स्त्रियोंका मुकाबला कर सकते हो ? उसमें भी हम लोगोंकी ही जीत है।

इसी बीचमें भइया आ पहुँचे। मैंने उन्हें अलग ले जाकर कहा—भइया, आप जो डाक्टर लाये थे, उसीकी बतलाई हुई व्यवस्थाके अनुसार मैं इतने दिनों तक चलती थी ; और उससे मेरी आँखें भी बहुत अच्छी हो गई थीं। पर एक दिन मैंने भूलसे खानेकी दवा आँखोंमें लगा ली, जिससे अब मेरी आँखें इतनी खराब हो गई हैं कि मानो जाना ही चाहती हैं। लोग कहते हैं कि आँखोंमें नश्तर देना होगा।

भइयाने कहा—मैं समझता था कि अभी तक तुम्हारे स्वामीकी ही चिकित्सा चल रही है। इसी लिए मुझे और भी गुस्सा आ गया था और मैं इतने दिनोंतक इधर नहीं आया था।

मैंने कहा—नहीं, मैं चोरीसे उसी डाक्टरकी बतलाई हुई दवा आदि करती थी ; मैंने इसलिए नहीं बतलाया कि कहीं वे नाराज न हो जायँ।

स्त्रीका जन्म ग्रहण करके इतना बड़ा झूठ भी बोलना पड़ता है। मैं अपने भइयाको भी दुःखी नहीं कर सकती थी और स्वामीके यशमें भी बट्टा नहीं लगा सकती थी। माता होकर गोदके बालकको भुलाए

रखना पड़ता है और स्त्री होकर बालकके पिताको भुलाए रखना पड़ता है। स्त्रियोंके लिए इतनी अधिक छलनाकी आवश्यकता होती है!

इस छलनाका फल यही हुआ कि मैंने अन्धी होनेसे पहले अपने भइया और स्वामीका मिलन देख लिया। भइयाने समझा कि चोरीसे चिकित्सा करनेके कारण यह दुर्घटना हुई और स्वामीने समझा कि यदि शुरूसे मेरे भइयाके परामर्शके अनुसार काम किया जाता तो अच्छा होता। यही सोचकर दोनों अनुतप्तहृदय अन्दर ही अन्दर क्षमाप्रार्थी होकर एक दूसरेके बहुत निकटवर्ती हो गये। मेरे स्वामी अब भइयासे परामर्श लेने लग गये और भइया भी विनीत भावसे सभी विषयोंमें मेरे स्वामी-की ही सम्मतिपर निर्भर रहने लगे।

अन्तमें दोनोंहीके परामर्शसे एक दिन एक अँगरेज डाक्टरने आकर मेरी बाईं आँखमें नश्तर लगाया। दुर्बल आँख यह आघात न सह सकी और उसमें जो कुछ थोड़ी बहुत दीप्ति बच रही थी, वह भी जाती रही। इसके उपरान्त दाहिनी आँख भी थोड़े दिनोंमें धीरे धीरे अन्धकारमें आवृत हो गई। बाल्यावस्थामें शुभ-दृष्टिके × दिन जो चन्दन-चर्चित तरुण मूर्ति मेरी आँखोंके सामने पहले पहल प्रकाशित हुई थी, उसके ऊपर मानो सदाके लिए परदा पड़ गया।

२

एक दिन स्वामीने मेरी शय्याके पास आकर कहा—अब मैं तुम्हारे सामने व्यर्थ अपनी बड़ाई नहीं करना चाहता। वास्तवमें तुम्हारी आँखें मैंने ही नष्ट की हैं।

मैंने देखा कि उनका गला रुँध गया है। मैंने दोनों हाथोंसे

× बंगालकी एक विवाहकी रस्म।

उनका दाहिना हाथ पकड़कर दबाते हुए कहा—चलो यह भी तुमने बहुत अच्छा किया। वह तुम्हारी चीज थी, तुमने ही ले ली। भला तुम्हीं सोचो कि यदि किसी दूसरे डाक्टरके हाथसे मेरी आँख खराब हुई होती, तो उसमें मेरे लिए कौन-सी सान्त्वना रह जाती? जो कुछ होनेको होता है, वह तो होकर ही रहता है। मेरी आँखोंको तो कोई बचा ही नहीं सकता था। ये आँखें तुम्हारे हाथसे गईं, बस मेरे अन्धे होनेका यही एक सुख है। जब पूजनमें फूल कम पड़ गये थे, तब रामचन्द्र अपनी दोनों आँखें निकालकर देवतापर चढ़ाने चले थे। मैंने भी अपने देवताको अपनी दृष्टि दे दी। तुम अपनी आँखोंसे जब कोई अच्छी और देखने योग्य चीज देखना, तब मुँहसे मुझसे भी कह देना। वह मैं तुम्हारी आँखोंका देखा हुआ प्रसाद समझकर ग्रहण करूँगी।

मैं सहसा इतनी अधिक बातें नहीं कह सकती थी और न सम्मुख इस प्रकार कहा ही जा सकता है। मैं ये सब बातें बहुत दिनों तक सोचती रही हूँ। बीच बीचमें जब कभी अवसाद आता था, निष्ठाका तेज कुछ मन्द पड़ जाता था, अपने आपको वंचित, दुःखित और दुर्भाग्य-दग्ध समझने लगती थी, तब मैं इसी प्रकारकी बातें सोच सोचकर अपना मन बहलाया करती थी। इसी शान्ति और इसी भक्तिका अवलम्बन करके मैं अपने आपको अपने दुःखसे भी अधिक ऊपर उठानेकी चेष्टा करती थी। जान पड़ता है कि उस दिन मैं अपने मनके कुछ भाव जबानी कहकर और कुछ भाव केवल चुप रहकर ही उन्हें एक प्रकारसे अच्छी तरह समझा सकी थी। उन्होंने कहा—कुसुम, मैंने मूढ़ता करके तुम्हारा जो कुछ नष्ट किया है, वह तो अब मैं किसी प्रकार तुम्हें लौटा नहीं सकता; परन्तु जहाँ तक मुझसे हो सकेगा, मैं तुम्हारा आँखोंका अभाव दूर करके तुम्हारे साथ साथ रहा करूँगा।

मैंने कहा—नहीं, यह कोई अच्छी बात नहीं है। तुम तो अपनी गृहस्थीको अन्धोंका अस्पताल बना रखना चाहते हो। पर मैं यह बात कभी होने नहीं दूँगी। तुम्हें और एक विवाह करना होगा।

यह विवाह करना किस लिए नितान्त आवश्यक है, यह बात विस्तारपूर्वक बतलानेसे पहले मेरा गला कुछ रुँधने-सा लगा। कुछ खाँसकर और कुछ अपने आपको सँभालकर मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि इतनेमें मेरे स्वामी आवेगपूर्वक बोल उठे—मैं मूढ़ हूँ, मैं अहंकारी हूँ, परन्तु पाखंडी नहीं हूँ। मैंने अपने हाथोंसे तुम्हारी आँखें नष्ट की हैं। यदि मैं अन्तमें इसी दोषके कारण तुम्हारा परित्याग कर दूँ और कोई दूसरी स्त्री ग्रहण कर लूँ, तो मैं अपने इष्टदेव गोपीनाथकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं ब्रह्म-हत्या और पितृ-हत्याका पातकी होऊँ।

मैं उन्हें इतनी बड़ी शपथ न खाने देती, बीचमें ही रोक देती, परन्तु उस समय आँसू मेरे कलेजेको बहाकर, गलेको दबाकर और आँखोंको पूरी तरहसे भरकर जबर्दस्ती निकल पड़नेका उद्योग कर रहे थे; और उन आसुओंको रोककर मैं मुँहसे कुछ कह ही नहीं सकती थी। उन्होंने जो कुछ कहा था, उसे सुनकर मैं विपुल आनन्दके उद्वेगमें तकिएमें मुँह छिपाकर रोने लगी। मैंने सोचा कि मैं अन्धी हो गई हूँ, फिर भी ये मुझे नहीं छोड़ेंगे। दुःखी जिस प्रकार दुःखको अपने हृदयमें रखता है, उसी प्रकार ये भी मुझे अपने हृदयमें रक्खेंगे। मैं इतना सौभाग्य नहीं चाहती थी; पर मन तो स्वार्थी होता है।

अन्तमें जब बहुत जोरसे बरसनेके कारण आँसुओंका पहला जोर कुछ कम हो गया, तब मैंने उनका मुँह अपनी छातीके पास खींचकर कहा—भला तुमने ऐसी भयंकर शपथ क्यों खाई? मैंने क्या तुम्हारे सुखके लिए तुमसे विवाह करनेके लिए कहा था? मैं तो सौतसे अपना

स्वार्थ-साधन करती। आँखोंके अभावके कारण तुम्हारा जो काम मैं स्वयं न कर सकती, वह काम मैं उससे करार्ती।

स्वामीने कहा—काम तो दासी भी कर सकती है। पर मैं किस सुभीतेके लिए एक दासीसे विवाह करूँगा? और फिर मैं किस प्रकार उसे लाकर अपनी इस देवीके साथ एक ही आसनपर बैठा सकूँगा?

इतना कहकर स्वामीने मेरा मुँह पकड़कर ऊपर उठाया और मेरे ललाटपर एक निर्मल चुम्बन अंकित कर दिया। उस चुम्बनसे मानो मेरा तीसरा नेत्र खुल गया, मानो उसी समय देवी-पदपर मेरा अभिषेक हो गया। मैंने मन ही मन कहा—चलो यही ठीक है। जब मैं अन्धी हो गई हूँ, तब इस बाहरी संसारमें मैं गृहिणी बनकर नहीं रह सकती। अब मैं इस संसारके ऊपर उठकर, देवी बनकर, अपने स्वामीका मंगल करूँगी। अब झूठ और छल आदि बिलकुल नहीं रह गया। गृहिणी स्त्रियोंमें जो कुछ क्षुद्रता और कपटता होती है, वह सब मैंने दूर कर दी।

उस दिन, दिन-भर अपने मनके साथ मेरा एक विशेष प्रकारका विरोध चलता रहा। इतनी भारी शपथसे बाध्य होकर स्वामी अब किसी प्रकार दूसरा विवाह नहीं कर सकेंगे, यह आनन्द मेरे मनको मानो डसने लगा और मैं किसी प्रकार उससे अपना पीछा न छुड़ा सकी। इस समय मेरे अन्दर जिस नवीन देवीका आविर्भाव हुआ था, उसने कहा—कभी कोई ऐसा दिन भी आ सकता है, जब इस शपथका पालन करनेकी अपेक्षा विवाह करनेमें ही तुम्हारे स्वामीका अधिक मंगल होगा। पर मेरे अन्दर जो पुरानी नारी थी, उसने कहा—हुआ करे; जब उन्होंने शपथ कर ली है, तब वे दूसरा विवाह तो कर ही नहीं सकेंगे। देवीने कहा—न करें; पर इसमें तुम्हारे प्रसन्न होनेकी कोई बात नहीं है। मानवीने कहा—मैं सब समझती हूँ; पर जब उन्होंने शपथ कर ली है तब, इत्यादि। बार बार वही एक बात। देवी उस समय

बिलकुल चुपचाप होकर देखने लगी और एक भयंकर आशंकाके अन्ध-कारमें मेरा समस्त अन्तःकरण आच्छन्न हो गया।

मेरे अनुतप्त स्वामीने मजदूरनीको मना कर दिया और मेरे सब काम वे आप ही करनेके लिए उद्यत हो गए। पहले तो छोटे छोटे कामोंके लिए भी इस प्रकार निरुपाय होनेके कारण निर्भर रहना बहुत अच्छा जान पड़ता था। इसका कारण यह था कि इस प्रकार वे सदा मेरे पास ही रहते थे। मैं उन्हें आँखों नहीं देख सकती थी, इसलिए उन्हें सदा अपने पास रखनेकी इच्छा बहुत अधिक बढ़ गई। स्वामीके मुखका जो अंश मेरी आँखोंके हिस्से पड़ा था, अब और इन्द्रियाँ उसी अंशको आपसमें बाँटकर अपना अपना अंश बढ़ानेकी चेष्टा करने लगीं। अब जब किसी कामसे स्वामी अधिक समय तक बाहर रहते, तब मुझे ऐसा जान पड़ता कि मानों मैं शून्यमें हूँ। ऐसा जान पड़ता कि मैं कहीं कुछ भी नहीं पाती हूँ। मानो मेरा सब कुछ खो गया है। पहले जब स्वामी कालिज जाया करते थे और उन्हें आनेमें देर होती थी, तब मैं सड़कवाले जंगलेकी आड़मेंसे उनका रास्ता देखा करती थी। जिस जगतमें वे घूमा करते थे, उस जगतको मैंने अपनी आँखोंके द्वारा अपने पल्लेमें बाँध रक्खा था। पर आज मेरा दृष्टिहीन समस्त शरीर उन्हें ढूँढ़नेकी चेष्टा करने लगा। उनकी पृथ्वीके साथ मेरी पृथ्वीको बाँधनेवाली जो जंजीर थी, वह आज टूट गई। आज उनके और मेरे मध्यमें एक दुरन्त अन्धता है। अब मुझे केवल निरुपाय होकर व्यग्र भावसे बैठे रहना पड़ता है। मैं यही सोचा करती कि वे कब अपने उस पारसे मेरे पास इस पार आवेंगे। इसी लिए अब जब वे क्षण-भरके लिए भी मुझे छोड़कर चले जाते, तब मेरा समस्त अन्धा शरीर उद्यत होकर उन्हें पकड़ने दौड़ता और हाहाकार करता हुआ उन्हें पुकारता।

परन्तु इतनी आकांक्षा, इतना अधिक निर्भर होना तो अच्छा नहीं। एक तो स्वामीके ऊपर स्त्रीका भार ही यथेष्ट है; उसके ऊपरसे यह अन्धताका भारी बोझ मैं नहीं लाद सकती। मैंने सोचा कि यह विश्वव्यापी अन्धकार मैं स्वयं ही अपने ऊपर लूँगी। मैंने एकाग्र मनसे प्रतिज्ञा की कि अपनी इस अन्धताके द्वारा मैं अपने स्वामीको अपने साथ बाँधकर नहीं रक्खूँगी।

थोड़े ही दिनोंमें मैं केवल शब्द, गन्ध और स्पर्शके द्वारा अपने सभी अभ्यस्त कार्य सम्पन्न करने लगी। यहाँ तक कि मैं अपने अनेक गृह-कार्य पहलेसे भी अधिक निपुणताके साथ करने लगी। अब मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि दृष्टि मेरे कामोंमें जितनी सहायता दिया करती थी, उससे अधिक वह मुझे विक्षिप्त कर दिया करती थी। अब मैं यह सोचने लग गई कि जितना कुछ देखनेसे काम अच्छी तरह हो सकता है, आँखें उससे कहीं अधिक देखती हैं। और जब आँखें पहरेका काम करती हैं, तब कान बिलकुल आलसी हो जाते हैं। जितना कुछ उन्हें सुनना चाहिए, उसकी अपेक्षा वे बहुत कम सुनते हैं। चंचल आँखोंकी अनुपस्थितिमें अब मेरी और सब इन्द्रियाँ अपना अपना कर्तव्य शान्त और सम्पूर्ण भावसे करने लग गईं।

अब मैं अपने स्वामीको अपना कोई काम नहीं करने देती और उनके सब काम भी पहलेकी ही भाँति स्वयं मैं ही करने लग गई।

स्वामीने मुझसे कहा—तुमने तो मुझे मेरे प्रायश्चित्तसे भी वंचित कर दिया।

मैंने कहा—मैं तो यह जानती ही नहीं कि तुम्हारा प्रायश्चित्त कैसा और किस बातका है। पर स्वयं अपने पापका भार मैं आप ही क्यों बढ़ाऊँ?

चाहे जो कुछ कहा जाय, पर जब मैंने उन्हें मुक्ति दे दी, तब वे भी एक निःश्वास डालकर एक बड़ी भारी झंझटसे छुट्टी पा गये। जन्म-भरके लिए अपनी अन्धी स्त्रीकी सेवा करनेका व्रत लेना पुरुष-का काम नहीं।

मेरे स्वामी डाक्टरी पास करके मुझे अपने साथ लेकर मुफस्सिलमें चले गये।

उस गाँवमें पहुँचनेपर मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानो मैं अपनी माताकी गोदमें आ गई हूँ। मैं अपनी आठ वर्षकी अवस्थामें गाँव छोड़कर शहरमें गई थी। इधर दस वर्षोंमें मेरे मनमें जन्म-भूमिकी धारणा छायाके समान अस्पष्ट हो गई थी। जब तक आँखें थीं, तब तक कलकत्ता शहर चारों ओरसे मेरी समस्त स्मृतिको घेरे हुए खड़ा था। जब मेरी आँखें जाती रहीं, तब मैंने समझा कि कलकत्ता केवल आँखोंको ही भुला रखनेवाला शहर है। इस शहरसे मनका सन्तोष नहीं होता। आँखोंके नष्ट होते ही मेरा वही बाल्यावस्थावाला गाँव सन्ध्याके नक्षत्रोंके प्रकाशके समान मेरे मनमें उज्ज्वल हो उठा।

अगहनके अन्तमें हम लोग हाशिमपुर गये। नया स्थान था, इस-लिए मेरी समझमें नहीं आया कि वह देखनेमें चारों ओर कैसा है। परन्तु फिर भी बाल्यावस्थाके उसी गन्ध और अनुभवके द्वारा उसने मेरे सभी अँगोंको घेर लिया। शिशिरसे भीगे हुए नए जोते हुए खेतोंकी वह प्रभातके समयकी हवा, वही सोनेमें ढले हुए अरहर और सरसोंके खेतोंकी सारे आकाशमें छाई हुई कोमल मीठी गन्ध, वही ग्वालोंका गान, यहाँ तक कि टूटे फूटे रास्तेसे जानेवाली बैलगाड़ियोंके चलनेका शब्द भी मुझे पुलकित करने लगा। जीवनके आरम्भकी मेरी वही अतीत स्मृति अपनी अनिर्वाचनीय ध्वनि और गन्धके साथ प्रत्यक्ष वर्तमानके समान मुझे चारों ओरसे घेरकर बैठ गई। अन्धी आँखें

उसका किसी प्रकारका प्रतिवाद न कर सकीं। मैं फिर मानो लौटकर अपनी उसी बाल्यावस्थामें चली गई। हाँ, केवल अपनी माँको मैं नहीं पा सकी। मैंने मन ही मन देखा कि मेरी बड़ी बहन बाल खोले हुए धूपकी ओर पीठ किये आँगनमें बैठी बड़ियाँ दे रही है; पर उसके मृदु कम्पित प्राचीन दुर्बल कण्ठसे हमारे गाँवके साधु भजनदासका देह-तत्त्वसम्बन्धी गान मुझे नहीं सुनाई पड़ा।

वही नवान्नका उत्सव शीतकालके शिशिर-स्नात आकाशमें सजीव होकर जाग उठा; परन्तु ढेकीमें नया धान कूटनेके लिए होनेवाली भीड़में मेरे गाँवकी छोटी छोटी सहेलियोंका जो समागम होता था वह कहाँ चला गया? सन्ध्याके समय कहीं पासहीसे गौओंके रँभानेकी आवाज सुनाई देती थी। उस समय मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मानो माँ हाथमें सन्ध्याका दीपक लेकर ग्वालेको दिखलानेके लिए जा रही है। साथ ही मानो भीगी हुई सानी और जलती हुई घासके धूएँकी गन्ध हृदयमें प्रवेश कर रही है। मानो ऐसा सुनाई पड़ता था कि पोखरीके उस पार विद्यालंकार महाशयके मन्दिरमेंसे घड़ियाल और घण्टाका शब्द आ रहा है। मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मानो किसीने मेरी बाल्यावस्थाके आठ वर्षोंमेंसे उसका समस्त वस्तु-अंश नितराकर केवल रस तथा गन्धका ही मेरे चारों ओर ढेर लगा दिया है।

साथ ही मुझे यह भी याद आया कि मैं बाल्यावस्थामें व्रत रखा करती थी और प्रातःकालके समय फूल तोड़कर शिवकी पूजा किया करती थी। यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि कलकत्तेकी बातचीत और रहन-सहनके झगड़ेने बुद्धिमें कुछ न कुछ विकार आ ही जाता है। धर्म, कर्म, भक्ति और श्रद्धा आदिमें वह निर्मल सरलता नहीं रह जाती। उस दिनकी बात मुझे याद आती है, जिस दिन मेरे अन्धे होनेके उपरान्त कलकत्तेमें हमारे महल्लेकी रहनेवाली एक सखीने आ-

कर मुझसे कहा था—देखो कुमु, तुम नाराज न होना। अगर तुम्हारी जगह मैं होती तो अपने स्वामीका कभी मुँह भी न देखती। मैंने कहा था—अब मुँह देखना तो बन्द हो ही गया है। इसके लिए, तो इन कम्बख्त आँखोंपर गुस्सा आता है। पर मैं अपने स्वामीके ऊपर क्यों क्रोध करूँ? मेरे स्वामीने ठीक समयपर डाक्टरको नहीं बुलवाया था इसी लिए लावण्य मेरे स्वामीसे बहुत नाराज थी और वह इस बातकी चेष्टा करती थी कि मैं भी उनके ऊपर नाराज हो जाऊँ। मैंने उसे समझाया कि संसारमें रहने पर इच्छासे, अनिच्छासे, जान-बूझकर, अनजानमें, भूलसे, भ्रान्तिसे अनेक प्रकारके सुख और दुःख हुआ ही करते हैं। परन्तु यदि मनमें भक्ति स्थिर रक्खी जा सके, तो दुःखमें भी एक प्रकारकी शान्ति रहती है। और नहीं तो फिर केवल लड़ाई झगड़े और बक-बक झक-झकमें ही सारी जिन्दगी बीत जाती है। मैं अन्धी हो गई हूँ, यह तो बहुत बड़ा दुःख है ही, अब इसके उपरान्त मैं स्वामीके प्रति विद्वेष करके दुःखका वह बोझ और अधिक क्यों बढ़ाऊँ? मेरी जैसी बालिकाके मुखसे इस प्रकारकी बातें सुनकर लावण्यने नाराज होकर अवज्ञापूर्वक सिर हिला दिया और वह उठकर चली गई। चाहे जो कहा जाय, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि बातोंमें विष होता ही है। ऐसी बातें बिलकुल व्यर्थ नहीं जातीं। लावण्यके मुखसे क्रोधकी जो बातें निकली थीं, उन्होंने मेरे मनमें भी दो एक चिनगारियाँ फेंक ही दी। उन चिनगारियोंको मैंने पैरोंसे मसलकर बुझा तो दिया था; पर फिर भी उसके दो एक दाग रह ही गये। इसी लिए मैं कहती थी कि कलकत्तेमें बहुतसे तर्क होते हैं, बहुत तरहकी बातें होती हैं। वहाँ देखते देखते अकालमें ही बुद्धि पककर कठिन हो जाती है।

गाँवमें आनेपर मेरी उसी शिवपूजाके शीतल शेफालिकाके फूलोंकी गन्धसे हृदयकी समस्त आशाएँ और विश्वास, उसी बाल्यावस्थाके

समान नवीन और उज्ज्वल हो उठे। मेरा हृदय और मेरा संसार देवता-से परिपूर्ण हो गया। मैं सिर नीचे करके लोटने लगी। मैंने कहा—हे देव, मेरी आँखें चली गईं, यह बहुत ही अच्छा हुआ। तुम तो मेरे हो।

हाय, मुझसे भूल हो गई। तुम मेरे हो, यह भी स्पर्द्धाकी बात है। मुझे तो केवल यही कहनेका अधिकार है कि मैं तुम्हारी हूँ। एक दिन गला दबाकर मेरे देवता यह बात मुझसे कहला ही लेंगे। कुछ भी न रह जाय, पर मुझे तो रहना ही पड़ेगा। और किसीके ऊपर तो मेरा कोई जोर है नहीं, केवल अपने ऊपर ही जोर है।

कुछ दिन बहुत ही सुखसे कट गये। डाक्टरीमें मेरे स्वामीकी प्रसिद्धि होने लगी। हाथमें कुछ रुपए भी आ गये।

परन्तु रुपया कोई अच्छी चीज नहीं है। उससे मन आवृत हो जाता है। मन जिस समय राजत्व करता है, उस समय वह अपने सुख-की आप ही सृष्टि कर सकता है। पर जब सुख-संचयका भार धन ले लेता है, तब फिर मनके लिए और कोई काम नहीं रह जाता। पहले जिस जगहपर मनका सुख रहा करता था, उस जगहपर माल असबाब आकर अपना अधिकार कर लेता है। उस समय सुखके बदले केवल सामग्री ही मिलने लगती है।

मैं किसी विशेष बात अथवा किसी विशेष घटनाका उल्लेख नहीं कर सकती; परन्तु या तो इस कारण कि अन्धोंमें अनुभवकी शक्ति अधिक होती है और अथवा किसी ऐसे कारणसे जिसे मैं नहीं जानती, मैं बहुत अच्छी तरह समझने लग गई कि धनके बढ़नेके साथ ही साथ मेरे स्वामीमें भी परिवर्तन होने लगा है। यौवनके आरम्भमें मेरे स्वामीमें न्याय-अन्याय और धर्म-अधर्मके सम्बन्धमें जो एक प्रकारका वेदना-बोध था; वह दिनपर दिन बधिर-सा होता जाता है। मुझे अच्छी तरह याद है कि वे पहले कभी कभी कहा करते थे कि

मैं केवल जीविका-निर्वाह करनेके लिए डाक्टरी नहीं सीख रहा हूँ, बल्कि इसलिए सीख रहा हूँ कि इसके द्वारा मैं बहुतसे गरीबोंका उपकार भी कर सकूँगा। जो डाक्टर किसी दरिद्र मुमूर्षुके या मरणासन्नके द्वारपर पहुँचकर बिना पेशगी फीस लिये नाड़ी नहीं देखना चाहते, उनका जिक्र आने पर घृणाके मारे मेरे स्वामीके मुँहसे बात नहीं निकलती थी। पर मैं समझती हूँ कि अब वे दिन नहीं रह गये। अपने एक मात्र लड़केके प्राणोंकी रक्षाके लिए एक दरिद्र स्त्रीने आकर उनके पैर पकड़ लिये, पर वे उसकी उपेक्षा कर गये। अन्तमें मैंने उन्हें अपने सिरकी सौगन्द देकर भेजा, फिर भी उन्होंने मन लगाकर उसका काम नहीं किया। जब हम लोगोंके पास रुपया कम था, तब मैं अच्छी तरह जानती हूँ, अन्यायपूर्वक रुपया कमानेको मेरे स्वामी कैसी दृष्टिसे देखते थे। पर अब बैंकमें बहुतसे रुपए जमा हो गये थे। एक दिन किसी धनवानका नौकर आकर दो दिनों तक एकान्तमें गुप्त रूपसे उनसे बहुत-सी बातें कर गया। मैं यह तो नहीं जानती कि क्या क्या बातें हुईं, पर जब उसके चले जानेके उपरान्त वे मेरे पास आये, तब उन्होंने बहुत ही प्रसन्नताके साथ भिन्न भिन्न अनेक विषयोंकी बहुत-सी बातें कीं। उस समय मैंने अपने अन्तःकरणकी स्पर्श-शक्तिके द्वारा समझ लिया कि आज वे अपने ऊपर कालिमा पोतकर ही आये हैं।

आँखें खोनेसे पहले मैंने अन्तिम बार जिन स्वामीको देखा था, मेरे वे स्वामी अब कहाँ हैं? जिन्होंने मेरी दोनों दृष्टिहीन आँखोंके मध्यमें चुम्बन अंकित करके मुझे एक दिन देवीके पदपर अभिषिक्त किया था, मैं उनका क्या कर सकी? काम क्रोध आदिमेंसे किसी शत्रुकी प्रबलता होनेपर किसी दिन अकस्मात् जिनका पतन होता है, वे हृदयके किसी दूसरे आवेगके कारण फिर ऊपर उठ सकते हैं; परन्तु यह तो दिन

दिन, बल्कि पल पलपर मज्जाके अन्दरसे कठिन होते जाना, बाहरकी ओर बढ़ते बढ़ते अन्तरको तिल तिल करके दबा डालना था। मैं इसका प्रतिकार सोचने लगी; पर मुझे कोई रास्ता दिखलाई नहीं दिया।

स्वामीको मैं अपनी आँखोंसे नहीं देख सकती थी, यह तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं। पर जिस समय मुझे इस बातका ध्यान आता कि जिस स्थानपर मैं हूँ, उस स्थानपर स्वामी नहीं हैं, तब अन्दरसे मेरा कलेजा फटने लगता। मैं अन्धी थी, संसारके आलोकसे वर्जित अन्तर प्रदेशमें मैं अपने जीवनके आरम्भिक कालका नवीन प्रेम, अक्षुण्ण भक्ति और अखंड विश्वास लिये हुए बैठी थी। बाल्यावस्थामें अपने जीवनके आरम्भमें मैंने अपने हाथोंकी अँजुलीसे अपने देवमन्दिरमें शेफालिकाका जो अर्घ्य दिया था, उसकी नमी अभी तक सूखी नहीं थी—और मेरे स्वामी यह छाया-शीतल और चिर-नवीनताका देश छोड़कर रुपये पैदा करनेके पीछे संसारकी मरु-भूमिमें न जाने कहाँ अदृश्य होते चले जा रहे थे। मैं जिस बातपर विश्वास करती थी, जिसे धर्म कहती थी, जिसे समस्त सुख सम्पत्तिसे बढ़कर समझती थी, मेरे स्वामी बहुत दूरसे उसी बातके प्रति हँसते हुए देखा करते थे। परन्तु एक दिन ऐसा भी था जब कि यह विच्छेद नहीं था। उस समय हम लोगोंने जीवनके आरंभमें एक ही मार्गपर साथ साथ यात्रा आरम्भ की थी। उसके उपरान्त हम लोगोंके मार्गमें कब अन्तर पड़ना आरम्भ हुआ, यह न तो वही जान सके और न मैं ही जान सकी। अब अन्तमें आज वह दिन आ पहुँचा, जब कि मैं उन्हें पुकारती हूँ और मुझे कोई उत्तर नहीं मिलता है।

कभी कभी मैं सोचा करती कि अन्धी होनेके कारण मैं किसी बातको बहुत बढ़ाकर देखती हूँ। यदि मेरी आँखें रहतीं, तो बहुत

सम्भव था कि मैं संसारको ठीक उसी रूपमें समझती और पहचानती जिस रूपमें वह वास्तवमें है।

एक दिन मेरे स्वामीने भी मुझसे यही बात समझाकर कही। उस दिन सवेरे एक वृद्ध मुसलमान अपनी पोतीके हैजेकी चिकित्सा करानेके लिए उन्हें बुलाने आया। मैंने उसे कहते हुए सुना—डाक्टर साहब, मैं बहुत गरीब हूँ, पर खुदा आपका भला करेगा! मेरे स्वामीने उत्तर दिया—खुदा जो कुछ करेगा, सिर्फ उसीसे तो हमारा काम चल नहीं सकता। इसलिए पहले यह बतलाओ कि तुम क्या करोगे? सुन-नेके साथ ही मैं सोचने लगी कि ईश्वरने मुझे अन्धा तो कर दिया, पर बहरा क्यों न किया? वृद्धने गहरी साँस लेकर कहा—या खुदा! केवल यही कहकर वह चला गया। मैंने उसी समय मजदूरनीके द्वारा उसे अन्तःपुरकी खिड़कीके पास बुलवाया और कहा—बाबा, तुम्हारी पोतीके इलाजके लिए मैं तुम्हें ये रुपये देती हूँ। तुम मेरे स्वामीके लिए मंगल-प्रार्थना करो और इसी महल्लेके हरीश बाबू डाक्टरको ले जाकर दिखलाओ।

परन्तु दिन-भर मुझे खाना पीना कुछ भी अच्छा न लगा। तीसरे पहर सोकर उठनेके उपरान्त स्वामीने पूछा—आज तुम कुछ खिन्न क्यों दिखलाई देती हो? पहलेका अभ्यस्त उत्तर मुँहपर आ रहा था। मैं कहना चाहती थी—नहीं, कुछ भी नहीं हुआ। पर अब छल-कपटके दिन चले गये थे। मैंने स्पष्ट कह दिया—मैं कई दिनोंसे तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ। पर जब मैं कहने लगती हूँ, तब मेरे सम-झमें ही नहीं आता कि मुझे क्या कहना है। मैं यह तो नहीं जानती कि मैं अपने हृदयकी बात ठीक तरहसे समझाकर तुमसे कह सकूँगी या नहीं, पर इसमें सन्देह नहीं कि तुम अपने मनमें समझ सकते हो कि हम दोनों आदमियोंने जिस प्रकार जीवन आरम्भ किया था, एक होकर

भी आज हम लोग उस प्रकार एक नहीं हैं—अलग हो गये हैं। स्वामीने हँसकर कहा—बस, परिवर्तन ही तो संसारका धर्म है। मैंने कहा—रुपये-पैसे, रूप-यौवन सभीमें परिवर्तन होता है। पर क्या कोई ऐसी चीज नहीं है जो नित्य हो? इस पर उन्होंने कुछ गम्भीर होकर कहा—देखो, और और स्त्रियाँ अनेक प्रकारके अभावोंके कारण दुःख करती हैं—किसीका स्वामी कुछ कमाता नहीं है—किसीका स्वामी प्रेम नहीं करता है। पर तुम बैठे बिठाये दुःखको आकाशसे खींचकर ले आती हो। उसी समय मैंने समझ लिया कि अन्धता मेरी आँखोंमें एक नया अंजन लगाकर मुझे इस परिवर्तमान संसारसे बाहर ले गई है। मैं और स्त्रियोंके समान नहीं हूँ, मेरे स्वामी मुझे न पहचान सकेंगे।

इसी बीचमें देशसे मेरी एक बुआ सास अपने भतीजेका हाल चाल देखनेके लिए आई। ज्यों ही हम दोनों उसे प्रणाम करनेके लिए उठकर खड़े हुए, त्यों ही पहली बात उसने यही कही—बहू, भला तुम तो अभाग्यसे अपनी दोनों आँखें खो बैठी हो, पर अब मेरा अविनाश अन्धी स्त्री लेकर किस प्रकार घर गृहस्थी चलावेगा? उसका एक और ब्याह करा दो। यदि उस समय स्वामी हँसकर केवल यही कह देते कि बुआ, यह तो बहुत अच्छी बात है। तुम्हीं कोई अच्छी लड़की देख सुनकर ठीक कर दो, तो सारी बात साफ हो जाती। पर उन्होंने कुछ कुण्ठित होकर कहा—बुआजी, तुम ये कैसी बातें कर रही हो! बुआने उत्तर दिया—वाह! भला मैं इसमें अन्यायकी कौन-सी बात कर रही हूँ? भला बहू, तुम्हीं बतलाओ कि मैंने क्या बुरा कहा? मैंने हँसकर कहा—बुआजी, तुम भी अच्छे आदमीसे सलाह ले रही हो। जिसकी गाँठ काटनी होती है, क्या उससे भी कभी कोई सम्मति लेता है? बुआने उत्तर दिया—हाँ भाई, यह बात तो तुम

ठीक कहती हो। अच्छा तो अब हम तुम छिपकर सलाह करेंगे। क्यों अविनाश, ठीक है न ? पर बहू, फिर भी मैं तुमसे एक बात कहती हूँ। कुलीनकी लड़कीकी जितनी ही ज्यादा सौतिनें हों, उसके स्वामीका गौरव उतना ही अधिक बढ़ता है। हमारा लड़का यदि डाक्टरी न करके खाली ब्याह ही करता, तो उसे रोजगारकी चिंता ही न करनी पड़ती ! रोगी डाक्टरके हाथमें पड़ते ही मर जाता है और जब वह मर जाता है, तब फीस नहीं देता। परन्तु विधाताके शापसे कुलीनकी स्त्रीको मृत्यु ही नहीं आती और वह जितना ही अधिक जीती रहे, उसके स्वामीका उतना ही अधिक लाभ है।

दो दिन बाद मेरे स्वामीने मेरे सामने ही अपनी बुआसे पूछा— बुआजी, क्या तुम भले घरकी कोई ऐसी लड़की ढूँढ़ सकती हो जो घरके आदमीकी तरह तुम्हारी बहूकी सहायता कर सके ? अब इन्हें आँखोंसे तो दिखलाई देता नहीं। यदि कोई ऐसी स्त्री मिल जाय जो सदा इनके साथ रहा करे, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। जब मैं अन्धी हुई थी, यदि उस समय शुरू शुरू में यह बात कही जाती, तो खप जाती। पर मेरी समझमें नहीं आता था कि अब मेरी आँखोंके अभावके कारण घर गृहस्थीके काममें क्या बाधा पड़ती है। तो भी मैंने किसी प्रकारका प्रतिवाद नहीं किया और मैं चुप बैठी रही। बुआने कहा—लड़कियोंकी क्या कमी है ? मेरे ही जेठकी एक लड़की है। वह देखनेमें जैसी सुन्दर है, वैसी ही लक्ष्मी भी है। हो भी सयानी गई है। बस हम लोग यही देख रहे हैं कि कोई अच्छा वर मिल जाय तो उसका ब्याह कर दिया जाय। यदि तुम्हारे ऐसा कुलीन मिले, तो अभी ब्याह हो सकता है। स्वामीने चकित होकर कहा—यहाँ ब्याह करनेके लिए कौन कहता है ! बुआने कहा—यदि तुम ब्याह न करोगे, तो क्या किसी भले घरकी लड़की यों ही तुम्हारे यहाँ आकर रह जायगी ? बात बहुत ठीक थी। स्वामी उसका कोई समुचित उत्तर न दे सके।

अपनी अन्धी आँखोंके अनन्त अन्धकारमें मैं अकेली खड़ी होकर ऊपरकी ओर मुँह करके पुकारने लगी—हे भगवान्, मेरे स्वामीकी रक्षा करो।

इसके कई दिनों बाद एक दिन जब मैं प्रातःकालके समय पूजा-सेवा करके बाहर आ रही थी, तब बुआने कहा—बहू, मैंने अपने जेठकी जिस लड़कीकी बात उस दिन कही थी, वह हेमांगिनी आज देशसे यहाँ आ गई है। हिमू, देखो यह तुम्हारी बहन है। इनको प्रणाम करो।

इसी बीचमें मेरे स्वामी भी हठात् वहाँ आ पहुँचे और मानो एक अपरिचित स्त्रीको देखकर लौट जाने लगे। बुआने पूछा—अविनाश, कहाँ जा रहे हो? स्वामीने पूछा—यह कौन है? बुआने कहा—यह वही मेरे जेठकी लड़की हेमांगिनी है। यह कब आई, इसे कौन लाया, यह किस लिए आई, आदि अनेक प्रकारके प्रश्न करके मेरे स्वामी बार बार अनावश्यक आश्चर्य प्रकट करने लगे।

मैंने मन ही मन कहा कि जो कुछ हो रहा है, वह सब तो मैं अच्छी तरह समझ ही रही हूँ। लेकिन उसके ऊपर अब यह छल कपट आरम्भ हो गया है—लुक्का-चोरी, बातें गढ़ना, झूठ बोलना आदि। यदि अपनी अशान्त प्रवृत्तिके लिए अधर्म करना चाहते हो, तो करो। पर मेरे लिए यह हीनता क्यों करते हो? मुझे छलनेके लिए यह कपट-पूर्ण आचरण क्यों करते हो?

मैं हेमांगिनीका हाथ पकड़कर उसे अपने सोनेके कमरेमें ले गई। उसके मुँह और शरीरपर हाथ फेरकर मैंने देखा कि उसका मुँह सुन्दर होगा और अवस्था भी चौदह पन्द्रह बरससे कम न होगी।

बालिका सहसा जोरसे हँसती हुई बोली—हैं यह क्या कर रही हो! क्या तुम मेरा भूत झाड़ रही हो?

उस उन्मुक्त सरल हास्य-ध्वनिसे मेरे अन्तरका अन्धकारपूर्ण मेघ मानो क्षण-भरके लिए टूट गया। मैंने अपनी दाहिनी बाँह उसके गलेमें डालकर कहा—मैं तुमको देख रही हूँ। यह कहकर मैंने फिर एक बार उसके कोमल मुखपर हाथ फेरा।

"देख रही हो?" यह कहकर वह फिर एक बार जोरसे हँस पड़ी। वह बोली—क्या मैं तुम्हारे बागकी सेम या बैंगन हूँ, जो तुम हाथ फेरकर देख रही हो कि कितना बड़ा हुआ है?

उस समय सहसा मुझे यह ध्यान आया कि कदाचित् हेमांगिनी यह बात नहीं जानती कि मैं अन्धी हूँ। मैंने कहा—बहन, मैं अन्धी हूँ। यह सुनकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ और थोड़ी देर बाद वह गम्भीर हो गई। मैंने बहुत अच्छी तरह समझ लिया कि वह अपने कुतूहलपूर्ण नेत्रोंसे मेरी दृष्टिहीन आँखों और मुँहका भाव बहुत ही ध्यानपूर्वक देख रही है। अन्तमें उसने कहा—ओह, तो शायद इसी लिए तुमने चाचीको यहाँ बुलवाया है?

मैंने कहा—नहीं, मैंने उन्हें नहीं बुलवाया है। वह आप ही यहाँ आई हैं।

बालिका फिर हँस पड़ी। उसने कहा—तो क्या वे दया करके यहाँ आई हैं? तब तो फिर दयामयी जल्दी यहाँसे टलेंगी भी नहीं। लेकिन बाबूजीने आखिर मुझे यहाँ क्यों भेजा?

इसी समय बुआने घरमें प्रवेश किया। अब तक वे मेरे स्वामीके साथ बातचीत कर रही थीं। उनके कमरेमें प्रवेश करते ही हेमांगिनीने पूछा—चाची, हम लोग घर कब चलेंगे?

बुआने कहा—वाह! अभी यहाँ आते देर नहीं हुई और चलनेकी

फिकर लग गई ? ऐसी चंचल लड़की तो मैंने कहीं देखी ही नहीं।

हेमांगिनीने कहा—चाची, मुझे तो तुम्हारे यहाँसे जल्दी टलनेके लक्षण नहीं दिखाई देते। पर तुम्हारे लिए तो यह ठहरा अपना घर। तुम्हारी जितने दिनों तक खुशी हो, तुम यहाँ रह सकती हो। पर मैं तुमसे कहे देती हूँ कि अब मैं यहाँसे चली जाऊँगी। इसके उपरान्त हेमांगिनी मेरा हाथ पकड़कर बोली—क्यों बहन, मैं ठीक कहती हूँ न ? आखिर तुम लोग कोई हमारे अपने तो हो ही नहीं ! हेमांगिनीके इस सरल प्रश्नका मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल उसे खींचकर गलेसे लगा लिया। मैंने समझ लिया कि बुआ चाहे कितनी ही प्रबला क्यो न हों, पर इस कन्याको सँभालना उनके लिए सम्भव नहीं है। बुआने ऊपरसे कुछ भी क्रोध न प्रकट करके हेमांगिनीके प्रति कुछ आदर प्रकट करनेकी चेष्टा की। पर हेमांगिनीने मानो वह आदर अपने शरीरपरसे झिड़ककर गिरा दिया। बुआने इन सब बातोंको उसी प्रकार उड़ा देनेकी चेष्टा की, जिस प्रकार किसी दुलारी लड़कीकी बातें उड़ाई जाती हैं; और वह हँसती हुई वहाँसे चलनेके लिए उद्यत हुईं। पर फिर न जाने क्या सोचकर वे लौट आईं और हेमांगिनीसे बोलीं—हेमांगिनी, चलो तुम्हारे नहानेका समय हो गया। हेमांगिनीने मेरे पास आकर कहा—अपने दोनों घाटपर नहाने जायँगीं। क्यों जी, ठीक है न ? इच्छा न होनेपर भी बुआ उस समय चुप रह गईं। उन्होंने सोचा कि यदि इस समय मैं बात बढ़ाऊँगी, तो अन्तमें हेमांगिनीकी ही जीत होगी और उन लोगोंका आपसका झगड़ा अशोभन रूपसे मेरे सामने प्रकट हो पड़ेगा।

खिड़कीके घाटकी तरफ जाते जाते हेमांगिनीने मुझसे पूछा—क्यों जी, तुम्हें कोई लड़का बाला क्यों नहीं हुआ ? मैंने कुछ हँसते हुए उत्तर दिया—भला मैं यह क्या जानूँ कि क्यों नहीं हुआ। ईश्वरने

दिया ही नहीं। हेमांगिनीने कहा—अवश्य ही तुममें कुछ पाप है। मैंने कहा—यह भी वही अन्तर्यामी जानते हैं! बालिकाने प्रमाण-स्वरूप कहा—देखो न, चाचीमें कितनी कुटिलता है। इसीसे उनको आज तक कोई लड़का बाला नहीं हुआ।

पाप-पुण्य, सुख-दुःख, दंड-पुरस्कार आदिका तत्त्व मैं स्वयं ही नहीं जानती थी, इसलिए मैंने उस बालिकाको भी नहीं समझाया। केवल एक ठंडा साँस लेकर मैंने मन ही मन उससे कहा—तुम्हीं जानो! हेमांगिनीने तुरन्त मुझे जोरसे पकड़कर लिपटा लिया और हँसते हुए कहा—क्यों जी, मेरी बात सुनकर भी तुम ठंडी साँस लेती हो? भला मेरी बातपर भी कभी कोई ध्यान देता है?

मैंने देखा कि अब मेरे स्वामीके डाक्टरी व्यवसायमें रुकावट होने लगी। यदि कहीं दूरसे कोई बुलाने आता है, तो वे जाते ही नहीं हैं और यदि कहीं आसपास जाते हैं, तो जल्दीसे काम निपटाकर चले आते हैं। पहले जब कामसे छुट्टी मिलनेपर घरमें रहते थे, तब केवल दोपहरके समय भोजन करने और सोनेके लिए घरमें आते थे। अब बीच बीचमें बुआ भी उन्हें बुला भेजा करतीं और वे स्वयं भी अनावश्यक रूपसे बुआकी खबर लेनेके लिए घरमें आ जाया करते। बुआ जब जोरसे पुकारतीं—हेमांगिनी, जरा मेरा पानका डिब्बा ले आ, तो मैं समझ लेती कि बुआके कमरेमें मेरे स्वामी आये हैं। आरम्भमें तो दो तीन दिन तक हेमांगिनी पानका डिब्बा, तेलकी कटोरी, सिन्दूरकी डिबिया आदि जो चीज माँगी जाती, ले जाया करती। पर दो तीन दिन बाद ऐसा होने लगा कि यदि कभी उसे आवाज दी जाती, तो वह किसी प्रकार अपनी जगहसे हिलती ही नहीं। हाँ जो चीज माँगी जाती, वह मजदूरनीके हाथ भेज देती।

उधर बुआ उसे आवाजपर आवाज दिया करतीं और बालिका मानो मेरे प्रति करुणाके आवेगसे मुझे जोरसे लिपटा लेती । उस समय मानो उसे कोई आशंका और विषाद घेर लेता । अबसे वह कभी भूलकर भी मेरे सामने मेरे स्वामीका कोई जिक्र नहीं करती ।

बीचमें मेरे भाई मुझे देखनेके लिए आये । मैं जानती थी कि भइयाकी दृष्टि बहुत ही तीव्र है । यहाँ इस समय क्या क्या बातें हो रही हैं, उनसे यह छिपाना कदाचित् असम्भव ही होगा । मेरे भइया बहुत कठिन विचारक (न्यायाधीश) थे । वे लेश मात्र अन्यायको भी क्षमा करना नहीं जानते थे । मुझे सबसे अधिक भय केवल इसी बातका था कि भइयाके सामने केवल मेरे स्वामी ही अपराधी ठहरेंगे । मैंने आवश्यकतासे बहुत अधिक प्रसन्न होकर इन सब बातोंको छिपा रक्खा । मैंने खूब बातें करके, खूब इधर दौड़ धूप करके, खूब धूमधाम करके मानो चारों ओर धूल उड़ाए रखनेकी चेष्टा की । पर मेरे लिए ये सब बातें इतनी अधिक अस्वाभाविक थीं कि केवल उन्हींके कारण मैं और भी अधिक पकड़ी गई । पर भइया अधिक दिनों तक नहीं ठहर सके । मेरे स्वामी इतनी अस्थिरता प्रकट करने लगे कि वह प्रकाश्य अप्रियताका रूप धारण करने लगी । भइया चले गये । विदा होनेसे पहले उन्होंने परिपूर्ण स्नेहके साथ बहुत देर तक मेरे माथेपर काँपता हुआ हाथ फेरा । मैं नहीं समझ सकी कि उन्होंने मन ही मन एकाग्र चित्तसे क्या आशीर्वाद दिया । हाँ मेरे, आँसुओंसे भीगे हुए गालोंपर उनके आँसू आ पड़े !

मुझे स्मरण आता है कि उस दिन चैत्र मासकी सन्ध्याका समय और हाटका दिन था । लोग अपने अपने घर लौट रहे थे । दूरसे वृष्टि

लिये हुए एक आँधी आ रही थी। उसीके कारण भीगी मिट्टीकी गन्ध और ठंडी ठंडी हवासे आकाश व्याप्त हो रहा था। अँधेरे रास्तेमें लोग व्याकुल होकर अपने अपने बिछड़े हुए साथियोंको पुकार रहे थे। मेरे सोनेके कमरेमें जब तक मैं अकेली रहती थी, तब तक दीआ नहीं जलता था। डर था कि कहीं दीएकी लौसे मेरी धोती न जल उठे, अथवा और कोई दुर्घटना न हो जाय। मैं उसी अँधेरे निर्जन कमरेमें जमीनपर बैठी हुई दोनों हाथ जोड़कर अपने अनन्त अन्धजगतके जगदीश्वरको पुकार रही थी। कह रही थी—प्रभु, जब मैं तुम्हारी दयाका अनुभव नहीं करती, जब तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझती, तब अपने इस अनाथ भग्न हृदयके डाँड़को दोनों हाथोंसे जोरोंसे पकड़कर कलेजेमें दबाए रखती हूँ। मेरे कलेजेमेंसे लहू निकलकर बहने लगता है, फिर भी तूफानको नहीं सँभाल सकती। अब तुम और कहाँ तक मेरी परीक्षा लोगे! और भला मुझमें बल ही कितना है! इतना कहते कहते मेरी आँखोंमें आँसू भर आये। मैं पलंगपर सिर रखकर रोने लगी। दिन-भर मुझे घरका सब काम करना पड़ता था। हेमांगिनी छायाकी तरह बराबर मेरे साथ लगी रहा करती थी। अन्दरसे मुझे रुलाई आती थी, पर आँसू बहानेके लिए मुझे अवसर ही न मिलता था। आज बहुत दिनोंके उपरान्त आँखोंका जल बाहर निकला था। इतनेमें मैंने देखा कि मेरा पलंग कुछ हिला और आदमीके चलनेकी कुछ आहट सुनाई पड़ी। क्षण ही भरमें हेमांगिनी आकर मेरे गलेसे लग गई और चुपचाप अपने आँचलसे मेरी आँखें पोंछने लगी। मैं नहीं समझ सकी कि वह सन्ध्याके समय ही क्या सोचकर और कब मेरे पलंगपर आ सोई है। उसने मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया। मैंने भी उससे कोई बात नहीं कही। वह धीरे धीरे मेरे ललाटपर अपना शीतल हाथ फेरने लगी। इस बीचमें कब बादल गरज गया और कब मूसलधार पानी बरस गया, इसका कुछ पता ही न लगा। बहुत दिनोंके उपरान्त एक सुस्निग्ध शान्तिने आकर ज्वरके दाहसे दग्ध मेरे हृदयको ठंडा कर दिया।

दूसरे दिन हेमांगिनीने कहा—चाची, यदि तुम्हें घर न जाना हो तो न जाओ, पर मैं तुमसे यह कहे देती हूँ कि मैं कल अपने माँझी भइयाके साथ घर चली जाऊँगी। बुआने कहा—भला इसकी क्या जरूरत है, मैं भी कल ही चलूँगी। मेरे साथ ही चली चलना। यह देखो, मेरे अविनाशने तुम्हारे लिए कैसी बढ़िया मोतीकी अँगूठी खरीद दी है। यह कहकर बुआने बड़े अभिमानसे वह अँगूठी हेमांगिनीके हाथमें दे दी। हेमांगिनीने कहा—देखो चाची, मैं कैसा अच्छा निशाना लगाती हूँ। यह कहकर उसने जंगलेमेंसे ताककर वह अँगूठी पोखरीके बीचमें फेंक दी। उस समय क्रोध, दुःख और आश्चर्यके मारे बुआकी बुरी दशा थी।

बुआने मेरा हाथ पकड़कर कई बार मुझसे कहा—देखो बहू, खबरदार, इसकी यह लड़कपनकी बात अविनाशसे न कहना। नहीं तो मेरे बच्चेके मनमें दुःख होगा। तुम मेरे सिरकी सौगन्द खाओ कि यह बात अविनाशसे नहीं कहोगी। मैंने कहा—नहीं बुआजी, तुम्हारे कहनेकी आवश्यकता नहीं। मैं उनसे कोई बात नहीं कहूँगी।

दूसरे दिन चलनेसे थोड़ी देर पहले हेमांगिनीने मुझे जोरसे लिपटाकर कहा—बहन, मुझे भूल न जाना, याद रखना। मैंने अपने दोनों हाथ उसके मुँहपर फेरते हुए कहा—बहन, अन्धे कभी कोई बात नहीं भूलते। मेरे लिए जगत तो है ही नहीं। मैं तो केवल एक मनके ही सहारे हूँ। इतना कहकर मैंने उसका माथा खींचकर सूँघा और चूमा। मेरी आँखोंसे आँसू निकल निकलकर उसके बालोंमें बहने लगे।

हेमांगिनीके बिदा हो जानेपर मानो मेरी सारी पृथ्वी सूख गई। वह मेरे प्राणोंमें जो सुगन्ध, सौन्दर्य और गीत, जो उज्ज्वल प्रकाश और जो कोमल तरुणता लाई थी, वह सब चली गई। उसके चले

जाने पर मैं अपने दोनों हाथ फैलाकर अपने चारों ओर अपने समस्त संसारमें देखने लगी कि कहाँ मेरा कौन है। मेरे स्वामीने आकर बहुत प्रसन्नता दिखलाते हुए कहा—ये लोग चली गईं, किसी तरह जान बची। अब कुछ काम धन्धा करनेके लिए समय मिला करेगा। हाय, मुझे धिक्कार है। भला मेरे लिए इतनी अधिक चतुराई क्यों? भला क्या मैं सत्यसे डरती हूँ? क्या मुझे आघातसे कभी कोई भय हुआ है? क्या मेरे स्वामी यह बात नहीं जानते कि जिस समय मैंने अपनी दोनों आँखें खोई थीं, उस समय मैंने शान्त मनसे ही सदाके लिए अन्धकार ग्रहण किया था?

इतने दिनों तक मेरे और मेरे स्वामीके बीच केवल अन्धताका ही परदा था; पर आजसे एक और नए व्यवधानकी सृष्टि हो गई। मेरे स्वामी कभी भूलकर भी मेरे सामने हेमांगिनीका नाम नहीं लेते। मानो उनके सम्पर्कीय संसारसे हेमांगिनी बिलकुल लुप्त ही हो गई हो। मानो उसने उसमें कभी लेश मात्र भी रेखा-पात नहीं किया। परन्तु मैं इस बातका अनायास ही अनुभव कर सकती थी कि वे पत्र-द्वारा बराबर उसका समाचार जाना करते हैं। जिस दिन तालाबमें बाढ़का जल प्रवेश करता है, उसी दिन पद्मके डंठलोंपर खिचाव पड़ता है। ठीक इसी प्रकार जिस दिन मेरे स्वामीके मनमें जरा-सा भी स्फीतिका संचार होता था, उसी दिन मैं अपने हृदयके मूलमेंसे उसका अनुभव कर सकती थी। मुझसे यह बात कभी छिपी नहीं रहती थी कि कब उनको हेमांगिनीका समाचार मिलता है और कब नहीं मिलता। परन्तु मैं भी उन्हें उसका स्मरण नहीं करा सकती थी। मेरे अन्धकारमय हृदयमें वह जो उन्मत्त, उद्दाम, उज्ज्वल, सुन्दर तारा क्षण-भरके लिए उदित हुआ था, उसका समाचार पाने और उसके सम्बन्धमें बातचीत करनेके लिए मेरे प्राण तृषित रहा करते थे। परन्तु अपने स्वामीके सामने

पल-भरके लिए उसका नाम लेनेका भी मुझे कोई अधिकार नहीं था। हम दोनों आदमियोंके बीचमें वेदनासे-परिपूर्ण एक नीरवता अटल भावसे विराज रही थी।

वैशाख मासके प्रायः मध्यमें एक दिन दासीने आकर मुझसे पूछा—बहूजी, घाटपर बड़े ठाठके साथ एक नाव तैयार हो रही है। बाबूजी कहाँ जायँगे? मैं जानती थी कि चुपचाप कुछ उद्योग हो रहा है। मेरे भाग्यके आकाशमें पहले ही कुछ दिनोंसे वह निस्तब्धता थी, जो आँधी आनेसे पहले हुआ करती है और उसके उपरान्त प्रलयके छिन्न विछिन्न मेघ आ आकर एकत्र हो रहे थे। संहारकारी शंकर नीरव उँगलीके संकेतसे अपनी समस्त प्रलय शक्तिको मेरे सिरकी ओर भेज रहे थे। यह सब बातें मैं पहलेसे ही अच्छी तरह समझ रही थी। मैंने दासीसे कहा—हैं! मुझे तो अभी तक कोई खबर ही नहीं है। दासीका मुझसे और कोई प्रश्न करनेका साहस नहीं हुआ और वह ठंडी साँस लेकर वहाँसे चली गई।

बहुत रात बीतने पर स्वामीने मेरे पास आकर कहा—एक बहुत दूरकी जगहसे मेरी बुलाहट आई है। कल सवेरे ही मुझे वहाँ जाना होगा। मैं समझता हूँ कि मुझे वहाँसे लौटनेमें दो तीन दिन लग जायँगे।

मैं पलंग परसे उठकर खड़ी हो गई और बोली—मुझसे झूठ मूठ बातें क्यों बना रहे हो?

मेरे स्वामीने काँपते हुए और अस्फुट स्वरसे कहा—मैंने इसमें झूठ क्या कहा?

मैंने कहा—तुम ब्याह करने जा रहे हो।

वे चुप रह गये। मैं भी स्थिर भावसे खड़ी रही। बहुत देर तक घरमें कोई शब्द नहीं हुआ। अन्तमें मैंने कहा—मुझे एक बातका उत्तर दो। कहो कि हाँ, मैं ब्याह करनेके लिए जा रहा हूँ।

उन्होंने प्रतिध्वनिके समान उत्तर दिया—हाँ, मैं ब्याह करनेके लिए जा रहा हूँ।

मैंने कहा—नहीं, तुम नहीं जाने पाओगे। इस महाविपत्ति, इस महापापसे मैं तुम्हें बचाऊँगी। यदि मैं इतना भी न कर सकी, तो फिर मैं तुम्हारी स्त्री ही किस बातकी ठहरी! मेरी शिव-पूजा और किस काम आयगी!

फिर बहुत देर तक घरमें सन्नाटा रहा। मैंने जमीनपर गिरकर और स्वामीके पैर पकड़कर कहा—मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है? मुझसे किस बातमें भूल हुई है? तुम्हें किस लिए दूसरी स्त्रीकी आवश्यकता है? तुम्हें मेरे सिरकी सौगन्ध, सच सच बतलाना।

इसपर मेरे स्वामीने धीरे धीरे कहा—मैं सच कहता हूँ, मुझे तुमसे भय लगता है। तुम्हारी अन्धताने तुम्हें एक अनन्त आवरणमें ढँक रक्खा है। मैं उसके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता। तुम मेरे लिए देवता हो; और देवताके ही समान मेरे लिए भयानक हो। तुम्हारे साथ रहकर मैं नित्य अपना गृहकार्य नहीं कर सकता। मुझे एक ऐसी साधारण स्त्री चाहिए जिसे मैं बकूँ, झकूँ, बिगड़ूँ, बनूँ, लाड़ प्यार करूँ, गहने कपड़े पहनाऊँ और इस प्रकारके और सब काम करूँ।

मैंने कहा—जरा मेरा कलेजा चीरकर देखो। मैं भी बहुत ही सामान्य स्त्री हूँ। मेरे मनमें नये विवाहकी उस बालिकाके सिवा और कुछ भी नहीं है। मैं विश्वास करना चाहती हू, निर्भर करना

चाहती हूँ, पूजा करना चाहती हूँ। तुम अपने आपको अपमानित करके और मुझे दुस्सह दुःख देकर अपने आपसे मुझे बड़ी मत बनाओ। सब बातोंमें मुझे अपने पैरोंके नीचे ही रक्खो।

भला क्या मुझे इस समय याद है कि उस समय मैंने उनसे और क्या क्या बातें कही थीं! क्या क्षुब्ध समुद्र कभी अपना गर्जन आप ही सुन सकता है! केवल यही याद आता है—मैंने कहा था कि यदि मैं सती हूँ, तो मैं भगवानको साक्षी करके कहती हूँ कि तुम कभी किसी प्रकार अपनी धर्म-शपथ न तोड़ सकोगे। उस महापापसे पहले ही या तो मैं विधवा हो जाऊँगी और या हेमांगिनी ही इस संसारमें न रह जायगी। बस इतना कहकर मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

जिस समय मेरी मूर्छा भंग हुई, उस समय न तो रात ही समाप्त हुई थी और न प्रभात समयके पक्षी ही बोलने लग गये थे। मेरे स्वामी चले गये थे।

मैं ठाकुरजीवाली कोठरीमें चली गई और अन्दरसे दरवाजा बन्द करके पूजा करने बैठ गई। दिन-भर मैं उस कोठरीके बाहर नहीं निकली। सन्ध्याके समय वैशाखके भीषण अन्धड़से दालान हिलने लगे। मैंने यह नहीं कहा कि हे ठाकुरजी, मेरे स्वामी अभी तक नदीमें ही नावपर होंगे, उनकी रक्षा करो। मैं एकान्त मनसे केवल यही कहने लगी कि हे ठाकुरजी, मेरे भाग्यमें जो कुछ बदा है, वह हुआ करे। परन्तु मेरे स्वामीको इस महापातकसे बचाओ। सारी रात बीत गई। दूसरे दिन भी मैं अपनी जगहसे नहीं उठी। मैं नहीं जानती कि उस अनिद्रा और उस अनाहारमें मुझे कौन आकर बल दे गया था, जो मैं उस पत्थरकी मूर्त्तिके सामने पत्थरकी मूर्त्तिकी ही भाँति बैठी रही!

सन्ध्या समय कोई बाहरसे दरवाजेको धक्का देने लगा। जिस

समय लोग दरवाजा तोड़कर उस कोठरीमें आये, उस समय मैं बेहोश पड़ी थी।

जब मेरी मूर्छा टूटी, तब मैंने सुना—'बहन!' मैंने देखा कि मैं हेमांगिनीकी गोदीमें सोई हुई हूँ। सिर हिलाते ही उसकी नई रेशमी साड़ी खस् खस् शब्द करने लगी। मैंने समझ लिया कि उसका विवाह हो गया। मैंने मन ही मन कहा—हे परमेश्वर! तुमने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी, मेरे स्वामीका पतन हो गया।

हेमांगिनीने सिर झुकाकर धीरेसे कहा—बहन, मैं तुमसे आशीर्वाद लेनेके लिए आई हूँ।

पहले तो क्षण-भरके लिए मानो मैं काठ हो गई; पर फिर तुरन्त ही सँभलकर उठ बैठी और बोली—भला बहन, मैं तुम्हें आशीर्वाद क्यों न दूँगी! इसमें तुम्हारा अपराध ही क्या है!

हेमांगिनी अपने सुमिष्ट उच्च स्वरमें हँस पड़ी और बोली—अपराध! क्यों जी, जब तुमने ब्याह किया, तब तो कोई अपराध नहीं हुआ और मैंने किया, तो अपराध हो गया!

हेमांगिनीको जोरसे गलेसे लगाकर मैं भी हँस पड़ी। मैंने मन ही मन कहा—क्या संसारमें मेरी प्रार्थना ही सबसे बढ़कर है? क्या उनकी इच्छा उससे भी बढ़कर नहीं है? जो आघात पड़ रहा है, वह मेरे ही सिरपर पड़े। पर मैं उस आघातको अपने हृदयके उस स्थानपर नहीं पड़ने दूँगी, जहाँ मेरा धर्म और मेरा विश्वास है। मैं जैसी थी, वैसी ही रहूँगी। हेमांगिनीने मेरे पैरोंपर गिरकर मेरी पद-धूलि ली। मैंने कहा—तुम सदा सौभाग्यवती रहो, सदा सुखी रहो!

हेमांगिनीने कहा—केवल इस आशीर्वादसे ही काम नहीं चलेगा।

तुम सती हो। तुम अपने हाथोंसे मेरा और अपने बहनोई का हाथ पकड़कर हम दोनोंको आशीर्वाद दो। उनसे लज्जा करनेसे काम नहीं चलेगा। यदि तुम आज्ञा दो, तो मैं उन्हें यहाँ ले आऊँ।

मैंने कहा—ले आओ।

थोड़ी देर बाद मुझे फिर अपने कमरेमें किसीके आनेकी आहट सुनाई पड़ी। किसीने स्नेहपूर्वक मुझसे पूछा—कुमू, अच्छी तरह हो?

मैं घबराकर उठ खड़ी हुई और पैरोंके पास प्रणाम करती हुई बोली—हाँ भइया।

हेमांगिनीने कहा—भइया किस बातके? ये तो तुम्हारे छोटे बहनोई न हैं!

अब सब बातें मेरी समझमें आ गईं। मैं जानती थी कि मेरे भइयाने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं कभी विवाह न करूँगा। मेरी माँ तो थी ही नहीं; तब अनुनय और अनुरोध करके कौन उनका ब्याह कराता! इसलिए इस समय मैंने ही उनका ब्याह करा दिया। मेरी दोनों आँखोंसे झर झर आँसू बहने लगे। वे किसी प्रकार रोके रुकते ही न थे। भइया धीरे धीरे मेरे सिरपर हाथ फेरने लगे। हेमांगिनी मुझसे लिपटकर केवल हँस रही थी।

रातके समय मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैं बहुत ही उत्कण्ठित चित्तसे अपना स्वामीके लौटनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। मैं कुछ भी स्थिर नहीं कर सकती थी कि वे इस लज्जा और निराशासे अपने आपको किस प्रकार सँभाल सकेंगे।

बहुत रात बीतने पर धीरे धीरे किवाड़ खुले। मैं चौंककर उठ

बैठी। वह मेरे स्वामीके पैरोंकी आहट थी। मेरा कलेजा अन्दरसे धड़-कने लगा।

स्वामी मेरे बिछौनेपर आ बैठे और मेरा हाथ पकड़कर बोले—तुम्हारे भइयाने मेरी रक्षा कर ली। मैं क्षण-भरके मोहमें पड़कर मरने जा रहा था। उस दिन जब मैं नावपर सवार हुआ था, तब मेरे हृदयपर जितना भारी बोझ था, उसे अन्तर्यामी ही जानते हैं। जिस समय मैं नदीके बीच आँधीमें पड़ गया, उस समय मुझे प्राणोंका भी भय हुआ। पर साथ ही मैं यह भी सोचने लगा कि यदि मैं इस समय नदीमें डूब जाऊँ, तो मेरा उद्धार हो जाय। मथुरगंज पहुँचकर मैंने सुना कि उससे एक दिन पहले ही तुम्हारे भाईके साथ हेमांगिनीका ब्याह हो गया है। मैं नहीं कह सकता कि उस समय मैं कैसी लज्जा और कैसे आनन्दसे लौटकर नावपर आया। इन दो ही चार दिनोंमें मैंने यह बात बहुत ही अच्छी तरह समझ ली है कि तुम्हें छोड़कर मुझे कोई सुख नहीं मिल सकता। तुम मेरी देवी हो।

मैंने हँसकर कहा—नहीं, मुझे देवी बनानेकी जरूरत नहीं। मैं तुम्हारे घरकी स्त्री हूँ—मैं एक साधारण नारी मात्र हूँ।

स्वामीने कहा—तुम्हें भी मेरा एक अनुरोध मानना पड़ेगा। अब आगे तुम मुझे कभी देवता कहकर अप्रतिभ न करना।

दूसरे दिन हमारे यहाँ खूब धूमधामसे जलसा हुआ। अब हेमांगिनी मेरे स्वामीके साथ खाते-पीते, उठते-बैठते, सबेरे-सन्ध्या अनेक प्रकारके उपहास करने लगी। उसके हँसी-मजाककी कोई सीमा ही न रह गई। पर किसीने कभी इस बातका कोई जिक्र तक नहीं किया कि मेरे स्वामी कहाँ गये थे और वहाँ क्या हुआ था।

समाप्त

रवीन्द्र बाबूके अन्य ग्रंथ

आँखकी किरकिरी (उपन्यास)		१॥)
चिरकुमारसभा	,,	१।)
साहित्य (निबन्ध)		१)
प्राचीन साहित्य	,,	॥-)
शिक्षा	,,	॥)
स्वदेश	,,	॥=)
राजा और प्रजा	,,	१)
समाज	,,	॥।=)
मुक्तधारा (नाटक)		॥≡)

संचालक—

हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।